मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 68 ● वर्ष 8, अंक 3 ● मई 2018 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

उत्तर प्रदेश में शिक्षा और रोज़गार की बदहाली के विरुद्ध राज्यव्यापी अभियान 7

कर्नाटक चुनाव और फासीवादी राजनीति के अश्लील मुज़ाहरे 9

मार्क्सवाद और सुधारवाद 13

मोदी सरकार के चार साल : अच्छे दिनों का सपना दिखाकर लूट-खसोट के नये कीर्तिमान

नफ़रत की ख़ूनी चादर से नाकामियों को ढँकने की नाकाम कोशिश

सम्पादक मण्डल

चार साल पहले 16 मई को लम्बे-चौड़े वादों के साथ भारी बहुमत से चुनकर आयी मोदी सरकार अपने किसी भी चुनावी वायदे को पूरा करने में नाकाम हो चुकी है। बढ़ती बेरोज़गारी, महँगाई, अपराध और असुरक्षा से बदहाल जनता का असन्तोष बढ़ता जा रहा है। केन्द्र और राज्यों की भाजपा सरकारें मज़दूरों के रहे-सहे क़ानूनी अधिकार भी ख़त्म करने के लिए तेज़ी से क़दम बढ़ा रही हैं। मन्दी और महँगाई की मार झेल रहे मज़दूरों में ग़ुस्सा उबल रहा है, बेरोज़गारी से तबाह नौजवान आये दिन सड़कों पर सत्ता से टकरा रहे हैं, ग़रीब किसान मर रहे हैं और दलितों, अल्पसंख्यकों और स्त्रियों पर बर्बर अत्याचारों ने सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। ज़्यादातर इलेक्ट्रॉनिक चैनलों और अख़बारों पर चन्द बड़े पूँजीपति घरानों का क़ब्ज़ा है और इस बिके हुए मीडिया द्वारा ढँकने-छुपाने की तमाम कोशिशों के बावजूद हर दिन नये-नये घपले-घोटाले सामने आने से भाजपा के फ़र्ज़ी सदाचार की धोती और भी नीचे खिसकती जा रही है। नैतिकता और शुचिता की दुहाई देने वाले इन फ़ासिस्टों की असलियत तब और भी नंगी हो गयी, जब पूरे देश ने देखा कि उन्नाव से लेकर जम्मू तक ये निहायत बेशर्मी के साथ बलात्कारियों के पक्ष में खड़े नज़र आये। और तो और, इन फ़र्ज़ी देशभक्तों को मासूम बच्ची के हत्यारों-बलात्कारियों को बचाने के लिए तिरंगा लेकर जुलूस निकालने में भी शर्म नहीं आयी।

मोदी सरकार के चार साल के कार्यकाल की उपलब्धि यही रही है कि एक ओर तो देशी-विदेशी बड़ी कम्पनियों को इस देश की दौलत को दोनों हाथों से लूटने की छूट दी गयी है, दूसरी ओर मज़दूरों-कर्मचारियों के बचे-खुचे अधिकारों को भी छीनकर उन्हें पूरी तरह से थैलीशाहों के ख़ूनी पंजों के हवाले कर देने के इन्तज़ाम किये जा रहे हैं। 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंकों में हम आपको ऐसे तमाम मज़दूर-विरोधी क़दमों के बारे में बताते रहे हैं। चुनाव में मोदी ने हर साल दो करोड़ युवाओं को रोज़गार देने का वादा किया था, लेकिन चार साल बीतने के बाद सरकारी आँकड़ों से अनुसार रोज़गार बढ़ने की बजाय और कम हो गये हैं। हर खाते में 15 लाख देश का सबसे लोकप्रिय चुटकुला बन चुका है। 'न खाऊँगा न खाने दूँगा' के दावे करने वाले चौकीदार की नाक के नीचे से सरकारी बैंकों के लाखों करोड़ रुपये गबन करके कई बड़े उद्योगपति फ़रार हो गये और चौकीदार लोगों को भरमाने के लिए ज़मीन पर लट्ठ पटक रहा है। वित्त मन्त्रालय और प्रधानमन्त्री कार्यालय में अनेक शिकायतों के बावजूद बैंक घोटाले होते रहे।

अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की हाल की रिपोर्ट में कहा गया कि भारत में रोज़गार के अवसर लगातार घटे हैं और जो अस्थायी रोजगार हैं, वहाँ कामगारों की स्थिति दयनीय है और अगले एक वर्ष तक भी यही स्थिति बनी रहेगी। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि देश के कामगार अपनी मूलभूत सुविधाओं के लिए तरस रहे हैं और वे बड़ी मुश्किल से इतनी कमाई कर पा रहे हैं कि परिवार का ख़र्चा चला सकें। रोज़गार छूटने की हालत में उन्हें तमाम तरह के दबावों और अभावों का सामना करना पड़ रहा है। यह पहली सरकार है जिसने अपने सभी लक्ष्य 2022 के लिए निर्धारित किये हैं, ताकि 2019 के लोकसभा चुनावों में उनके पूरे न होने पर कोई सवाल ही नहीं उठाये। पेट्रोल और डीजल की क़ीमतें अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में जब लगातार कम हो रही थीं तो मोदी सरकार सेण्ट्रल एक्साइज़ ड्यूटी लगातार बढ़ाकर सरकारी ख़ज़ाना भरने में जुटी हुई थी। अब जब कच्चे तेल की क़ीमतें बढ़ रही हैं और पेट्रोल-डीज़ल के दाम आसमान छू रहे हैं, तब उस पर क़रीब 8 रुपये प्रति लीटर रोड एण्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर सेस और ठोक दिया गया है।

मोदी सरकार और उसका मालिक

(पेज 8 पर जारी)

नेशनल पेंशन स्कीम - कर्मचारियों के हक़ों पर डकैती डालने की नयी स्कीम

प्रसेन

नेशनल पेंशन स्कीम (न्यू पेंशन स्कीम) भाजपा सरकार द्वारा कर्मचारियों के हक़ों पर डकैती डालने की नयी स्कीम है। इसीलिए बहुत सारे कर्मचारी इसे 'नो पेंशन स्कीम' भी कहते हैं। पूँजीवादी मीडिया, भाजपा व संघ परिवार की यूनियनें व लगुए-भगुए संगठन एनपीएस को भाजपा सरकार की दूरदर्शी योजना के रूप में पेश कर रहे हैं। अपने हर कुकृत्य को छिपाने के लिए भाजपा हमेशा राष्ट्रहित-देशहित की आड़ लेती है। इस स्कीम को भी वह देशहित, कर्मचारियों के लिए लाभप्रद स्कीम के रूप में प्रचारित कर रही है। 'नेशनल पेंशन स्कीम' के बारे में पारदर्शी, सरल प्रक्रिया, अद्वितीय आदि शब्दाडम्बरों का इस्तेमाल सरकारी वेबसाइटों पर देखा जा सकता है। इसे बुढ़ापे की लाठी के रूप में प्रचारित किया जा रहा है और बताया जा रहा है कि हमें वर्तमान समय में जागना होगा और भविष्य के प्रति चिन्ता करते हुए न्यू पेंशन स्कीम से जुड़ना होगा, जिसके लिए आपको समय रहते कुछ इन्वेस्ट करना होगा जो आपको वृद्धावस्था में लाभ दे।

'नेशनल पेंशन स्कीम' किस तरीक़े से कर्मचारी-विरोधी स्कीम है – इस पर बात करने से पहले इसके इतिहास पर थोड़ी सी बात ज़रूरी है। अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने 10 अक्टूबर 2003 को पेंशन फ़ण्ड नियामक एवं विकास प्राधिकरण की स्थापना की थी जिसने 2004 में 'नेशनल पेंशन स्कीम' लांच की। 'नेशनल पेंशन स्कीम' ने 1 मई 2009 में कार्य शुरू किया (इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि मज़दूरों के हक़ों-अधिकारों की लड़ाई के महत्वपूर्ण दिन – 1 मई को कर्मचारियों को मिलने वाली पेंशन भी छीन ली गयी)। इस स्कीम के अन्तर्गत वे केन्द्रीय कर्मचारी (साथ में राज्य सरकारों के कर्मचारी) आते हैं जिनकी नियुक्ति 1 जनवरी 2004 को या उसके बाद हुई है।

एनपीएस स्कीम एक अंशदायी स्कीम है जिसमें कर्मचारियों के वेतन से 10% काटा जायेगा और 10% सरकार द्वारा अंशदान के रूप में दिया जायेगा। काटे गये पैसे को शेयर मार्केट में लगाया जायेगा। अगर शेयर मार्केट डूब गया तो कर्मचारियों का पैसा डूब जायेगा, लेकिन सरकार इसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं लेगी। पुरानी पेंशन (गारण्टीड पेंशन स्कीम) में कोई कटौती नहीं होती थी, तथा कर्मचारियों के रिटायर होने पर उस समय के अन्तिम वेतन (मूल वेतन और महँगाई भत्ता) का पचास प्रतिशत पेंशन के रूप में देने का प्रावधान था, लेकिन 'नेशनल पेंशन स्कीम (एनपीएस) में सेवानिवृत्ति पर कुल रक़म जो शेयर मार्केट निर्धारित करेगा, उसका 40% प्रतिशत सरकार आयकर के रूप में कटौती कर लेगी। तथा बची हुई 60% की राशि का ब्याज़ पेंशन के रूप में दी जायेगी, जो बहुत ही कम होगी। इतना ही नहीं, इसमें सेवाकाल के दौरान कर्मचारी की स्थायी अपंगता व मृत्यु के पश्चात परिवार की ज़िम्मेदारी का निर्वहन व भविष्य के लिए कोई उल्लेख नहीं है। कुल मिलाकर यह कि सरकारी कर्मचारियों को सामाजिक सुरक्षा के नाम पर जो कुछ भी मिलता था, उसको भी ख़त्म कर देने की योजना है।

वास्तव में मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था आर्थिक संकट के लाइलाज भँवरजाल में फँस चुकी है। 1990-91 में आर्थिक उदारीकरण-निजीकरण की नीतियाँ इसी भँवरजाल से निकल पाने की क़वायद थी। लेकिन जैसा कि हमेशा

(पेज 12 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

हम सब मेहनतकश आदमखोर पूँजीपतियों की लूट का शिकार हैं।

सभी बिगुल पाठकों को मेरा क्रान्तिकारी अभिनन्दन,

साथियो, मेरा नाम रमन है, मैं हरियाणा के कैथल ज़िले के चैशाला गाँव का निवासी हूँ। मेरा जन्म एक मज़दूर परिवार में हुआ। और मैंने अपने परिवार की गाढ़ी कमाई के सहारे डिप्लोमा किया। इसके बाद गुड़गाँव, रेवाड़ी, बद्दी, डेराबस्सी, पानी आदि स्थानों पर नौकरी के लिए आवेदन दिया, लेकिन कहीं भी सिफ़ारिश या जान-पहचान न होने के कारण मेरे आवेदनों का कोई जवाब नहीं आया। उसके बाद मैनें दो साल एसएससी-एचएसएससी की कोचिंग शुरू कर दी। लम्बी तैयारी के बाद कोचिंग की धन्धेबाज़ी और सरकारी नौकरियों की बेहद कमी के कारण मैं हताश हो गया। और उसके बाद मैं कैथल की चावल मिल में मज़दूर के रूप में काम करने लगा। वहाँ मुझे 12 घण्टे के 7500 रुपये मिलते थे। इसके अलावा न कोई छुट्टी और न ही कम्पनी की तरफ़ से कोई चाय या फिर लंच के टाइम-सीमा तय नहीं थी। मुझे वहाँ चावल पोलिश की बोरिया मशीन से हटाकर 25-30 फ़ीट की दूरी पर उठाकर ले जानी थी। जिसके लिए बिल कार्ट होनी चाहिए। मुनाफ़ाखोर मालिक इसकी माँग करने पर काम से निकालने की धमकी देता है। साथ ही धूल और कचरे से बचने के लिए हमें न कोई मास्क नहीं दिया जाता और न ही दस्ताने। काम के दौरान आलम ये था कि मज़दूर बाथरूम या फिर किसी और काम से 5-10 मिनट भी कहीं नहीं जा सकता है। यहाँ काम करने वाले पलेदार सुबह 8 बजे से रात को 10-12 बजे तक हज़ारों बोरियाँ ढोते हैं, मगर उनको हर रोज़ सिर्फ़ 300-350 रुपये ही 14-16 घण्टे काम करने पर मिलते है और सभी काम यहाँ ठेके पर लिया जाता है। ठेकेदार का मज़दूरों के प्रति बहुत बुरा व्यवहार है। कई बार तो थक चुका मज़दूर जब काम न कर पर रहा हो, तो उसकी पिटाई तक कर दी जाती है। यहाँ हर आदमी जो काम करता है एक पशु जैसी ज़िन्दगी जी रहा है। दूसरी ओर मालिक हमारी मेहनत पर आदमखोर जोक की तरह अपनी निजी सम्पत्ति बढ़ाने में लगा हुआ है। फ़ैक्टरी में अन्य राज्यों के मज़दूर भी हैं। इसलिए ठेकेदार मज़दूरों को धर्म-जाति के नाम पर बाँटने की चालें चलता रहता है। साथियो, पहले मैं बिगुल अख़बार में मज़दूरों के हालातों की ख़बरें पढ़ता था, लेकिन मैं भी देख रहा हूँ कि हम सब मेहनतकश आदमखोर पूँजीपतियों की लूट का शिकार हैं। ऐसे में मज़दूरों को संगठित होकर आठ घण्टे काम, रविवार की छुट्टी, ओवरटाइम का डबल रेट, कैण्टीन का खाना और दुर्घटना होने पर उचित मुआवज़ा, सुरक्षा उपकरण आदि की माँग करनी होगी। ताकि हम भी एक सम्मानजनक ज़िन्दगी जी सके।

साथियो, मैं 'मज़दूर बिगुल' पिछले एक साल से पढ़ रहा हूँ, जिसके ज़रिये मैंने मज़दूर के हक़-अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संगठित होकर जुझारू आन्दोलन करने की ज़रूरत को समझा और जाना है।

रमन,
कैथल, चैशाला गाँव

नगरपालिका, नगरनिगम और नगर परिषदों के कर्मचारी हड़ताल पर

(पेज 3 से आगे)

ही हाथ धो बैठते हैं।

सफ़ाई कर्मचारियों के अतिरिक्त निगम में काम करने वाले माली, लिपिक, बेलदार, चौकीदार, चपरासी, अग्निशमन सम्हालने वाले, स्वास्थ्यकर्मी, इलेक्ट्रिशियन, ऑपरेटर इत्यादि के हालात भी बुरे हैं। ज़्यादातर या तो डीसी रेट पर ऐडहॉक काम करते हैं या फिर ठेकेदारी प्रथा के तहत। आज चुनावी पार्टियों और ठगों, लुटेरों में कोई फ़र्क़ नहीं रह गया है। चुनाव से पहले मनमाने चुनावी जुमले उछालो और फिर उन जुमलों को अपने कानों में ठूँस लो और सरकार बनने के बाद दिल खोलकर लुटेरी नीतियों को लागू करो। फिर जनता को जाति-धर्म-आरक्षण के नाम पर लड़ाओ! हरियाणा में भी यही हो रहा है। बहुत से विभागों में ठेकेदारी प्रथा की शुरुआत करने वाली हरियाणा की भूपेन्द्र सिंह हुड्डा वाली सरकार थी, किन्तु अब हुड्डा साहब बहती गंगा में हाथ धोने के मक़सद से यह वायदा कर रहे हैं कि कांग्रेस की सरकार बनते ही "वे" कच्चे कर्मियों को पक्का कर देंगे और ठेकेदारी प्रथा समाप्त कर देंगे!

फ़िलहाल हरियाणा में नगर पालिका कर्मचारी संघ, हरियाणा कर्मचारियों की हड़ताल का नेतृत्व कर रहा है। जोकि सर्व कर्मचारी संघ, हरियाणा से सम्बन्ध रखता है। निश्चित तौर पर हरियाणा में कर्मचारियों ने लम्बे और जुझारू संघर्ष लड़े हैं किन्तु उसके बावजूद भी सरकारें और पूँजीपति वर्ग कर्मचारी विरोधी नीतियाँ लागू करने में आगे क़दम बढ़ाते रहे हैं। देश की तरह हरियाणा की भी कर्मचारियों की यूनियनों और संगठनों में अर्थवाद पूरी तरह से हावी रहा है। वेतन-भत्ते की लड़ाई ही प्रमुखता से लड़ी गयी तथा वे भी बिना ढंग के राजनीतिक नेतृत्व के समझौतापरस्त ढंग से ही लड़ी जायेंगी। मज़दूर और कर्मचारी वर्ग को मेहनतकश वर्ग के इतिहास से प्रेरणा लेते हुए ऐसे समाज के निर्माण को अपने दूरगामी लक्ष्य के तौर पर सुनिश्चित करना होगा, जिसमें एक इंसान के द्वारा दूसरे इंसान का शोषण असम्भव हो जाये। कहने को हड़तालों के दौरान क्रान्तिकारी नारे तो ख़ूब सुनायी देते हैं, किन्तु आर्थिक संघर्षों से अलग क्रान्तिकारी शिक्षा-दीक्षा का नितान्त अभाव दृष्टिगोचर होता है। मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी इतिहास कहीं न कहीं नज़रों से ओझल है। हमारा यह स्पष्ट मानना है कि केवल आर्थिक संघर्ष ज़रूरी होने के बावजूद मात्र इन संघर्षों से काम नहीं चल सकता और आर्थिक संघर्ष भी जुझारू तरीक़े से तभी लड़े जा सकते हैं, जब नेतृत्व राजनीतिक तौर पर सचेत हो।

फ़िलहाल हरियाणा के नगर पालिका, नगर परिषदों और नगर निगमों के कर्मचारियों की हड़ताल जारी है। इसका क्या परिणाम निकलता है यह फ़िलहाल भविष्य के गर्भ में है।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" - **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

पूँजीपतियों के पास दर्जनों अख़बार और टीवी चैनल हैं। मज़दूरों के पास है उनकी आवाज़ 'मज़दूर बिगुल'! इसे हर मज़दूर के पास पहुँचाने में हमारा साथ दें।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853093555, 9936650658
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - 5/- रुपये वार्षिक - 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/- रुपये

आईएमटी रोहतक की आइसिन कम्पनी के मज़दूरों के संघर्ष की रिपोर्ट

आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में लड़े गये आइसिन के मज़दूरों के संघर्ष को विगत 3 मई 2018 को एक साल पूरा हो गया। ज्ञात हो, आइसिन ऑटोमोटिव हरियाणा प्राइवेट लिमिटेड नामक कम्पनी जोकि एक जापानी मालिकाने वाली कम्पनी है। आईएमटी रोहतक, हरियाणा में स्थित है। यह कम्पनी ऑटोमोबाइल सेक्टर की एक वेण्डर कम्पनी है, जोकि ख़ासतौर पर मारुति, होण्डा, टोयोटा इत्यादि कम्पनियों के लिए ऑटो पार्ट जैसेकि डोर लॉक, इनडोर-आउटडोर हैण्डल इत्यादि बनाने का काम करती है। अत्यधिक कार्यभार (वर्कलोड), बेहद कम मज़दूरी, मैनेजमेण्ट द्वारा गाली-गलौच और बुरा व्यवहार, श्रम क़ानूनों का हनन, स्त्री श्रमिकों के साथ छेड़छाड़ की घटनाएँ आदि वे मुद्दे थे जिन्होंने आइसिन के मज़दूरों को एकजुट होने की ज़रूरत का अहसास कराया। मज़दूरों ने धीरे-धीरे आपसी संवाद स्थापित किया और ट्रेड यूनियन एक्ट 1926 के तहत श्रम विभाग में यूनियन पंजीकरण की फ़ाइल लगा दी। थोड़ा ही समय हुआ था कि ख़ुद श्रम विभाग द्वारा मैनेजमेण्ट के कानों तक यह ख़बर पहुँच गयी और बड़े ही शातिराना अन्दाज़ में मैनेजमेण्ट श्रम विभाग से साँठ-गाँठ करके पंजीकरण फ़ाइल को रद्द कराने में जुट गयी। क़रीब एक महीने तक मज़दूर कम्पनी गेट पर जमे रहे, उसके बाद मैनेजमेण्ट ने प्रशासन के साथ मिलकर मज़दूरों, अभिभावकों और कार्यकर्ताओं पर लाठीचार्ज करवा दिया और 426 को जेलों में ठूँस दिया गया और झूठे मुक़दमों में फँसा दिया गया। जमानत के बाद भी श्रमिकों ने लड़ना नहीं छोड़ा और धरने-प्रदर्शन के साथ-साथ कोर्ट-कचहरी का रास्ता अपनाया।

स्थानीय प्रशासन, स्थानीय नेताओं, श्रम विभाग के छोटे से लेकर बड़े अधिकारियों यानी हर किसी के दरवाज़े पर मज़दूरों ने दस्तक दी, किन्तु न्याय मिलने की बजाय हर जगह से झूठे दिलासे ही मिले। अब मज़दूर आबादी को तो हर रोज़ कुआँ खोदकर पानी पीना पड़ता है, तो कब तक धरना जारी रहता! आख़िरकार क़रीब 3 महीने के धरने-प्रदर्शन के बाद आइसिन के मज़दूरों का आन्दोलन क़ानूनी रूप से केस-मुक़दमे जारी रखते हुए धरने के रूप में ख़त्म हो गया। ज़्यादातर ठेके, ट्रेनी और अन्य मज़दूर काम की तलाश में फिर से भागदौड़ के लिए मजबूर हो गये। कम्पनी में ठेके पर नयी भर्ती फिर से कर ली गयी और उत्पादन बदस्तूर जारी है। अब कोर्ट-कचहरी में मज़दूरों को कितना न्याय मिला है, सामने है ही; और आइसिन के श्रमिकों को कितना मिलेगा, यह भी सामने आ ही जायेगा। और देर-सवेर कोर्ट के माध्यम से कुछ होता है तो भी 'देरी से मिलने वाला न्याय'; न्याय नहीं समझा जा सकता!

इस बीच आइसिन के मज़दूरों के लिए एक सकारात्मक पहलू यह है कि ज़िला अदालत में 426 श्रमिकों, परिजनों और मज़दूर कार्यकर्त्ताओं पर चल रहे मुक़दमे में 412 को सिविल जज के द्वारा बाइज्जत बरी कर दिया गया। अब यह फ़र्जी केस 12 अगुआ श्रमिकों पर ही चलेगा और इसमें भी नीयत वही परेशान करने वाली ही है। यह तो पहले से ही स्पष्ट था कि इस मामले में कम्पनी प्रबन्धन और स्थानीय प्रशासन के द्वारा मज़दूरों को जानबूझकर फँसाया गया था, इसलिए देर-सवेर बरी होना तो निश्चित था ही! मज़दूरों के द्वारा कम्पनी प्रबन्धन पर किये गये कोर्ट केस पिछले क़रीब एक साल से चल रहे हैं, यह बात शीशे की तरह साफ़ है कि मज़दूर पूरी तरह निर्दोष हैं और कम्पनी प्रबन्धन सरासर दोषी है। फिर भी कम्पनी मालिक और प्रबन्धन पर कार्रवाई नहीं हो रही है। श्रम क़ानूनों को कम्पनी प्रबन्धन अपनी ठोकर पर समझता है। कारण साफ़ है कि कम्पनी के पास पैसे की तो कोई कमी है नहीं! श्रम विभाग और स्थानीय प्रशासन के कम्पनी प्रबन्धन के पक्ष में रवैये से तो यही लगता है कि दाल में कुछ काला ज़रूर है। फिर भी क़ानूनी पचड़े में कम्पनी को आर्थिक नुक़सान और सिरदर्दी तो होती ही है, तो अब कम्पनी प्रबन्धन फ़ोन कर-करके मज़दूरों को नये सिरे से 'ज्वॉइन' करने का लुकमा फेंक रहा है। किन्तु नये सिरे से 'ज्वॉइन' करने का मतलब है नये सिरे से शुरुआत करना और पिछले कई साल तक किये गये काम का कोई मोल नहीं! सीधी सी बात है श्रमिक इस शर्त पर 'ज्वॉइनिंग' क्यों करने लगे? श्रमिकों का कहना है कि नौकरी मिले तो सभी को मिले और वह भी पुराने रोल पर ही।

विगत 3 मई को आइसिन के मज़दूरों के संघर्ष को एक वर्ष पूरा होने के अवसर पर तथा साथ ही मई दिवस के शहीदों को याद करने के मक़सद से आइएमटी गेट पर एक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया था। इस दौरान आयोजित सभा को विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियों ने सम्बोधित किया। यूनियन के प्रधान जसबीर और महासचिव अनिल ने अब तक के कोर्ट में चल रहे मामलों की रिपोर्ट प्रस्तुत की। सभा में बिगुल मज़दूर दस्ता की तरफ़ से इन्द्रजीत ने भी बात रखी। अपनी बात में इन्द्रजीत ने आर्थिक माँगों के तहत आन्दोलन संगठित करने की ज़रूरत को तो सामने रखा ही, साथ ही उन्होंने कहा कि मज़दूर वर्ग का ऐतिहासिक दूरगामी लक्ष्य राजनीतिक सत्ता हासिल करना है। ताकि ऐसा करके मज़दूरी की व्यवस्था को चकनाचूर किया जा सके और एक समतामूलक, शोषणविहीन समाज बनाया जा सके। उन्होंने कहा कि अलग-अलग सेक्टरों में चल रहे मज़दूर आन्दोलनों की समस्याओं को समझते हुए इन्हें रचनात्मक ढंग से खड़ा करना होगा। आज सेक्टरगत और इलाक़ाई यूनियनें वक़्त की ज़रूरत हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि आज फ़ोर्डिस्ट असेम्बली लाइन की बजाय ग्लोबल असेम्बली लाइन का अस्तित्व है। मज़दूरों को बिखरा दिया गया है। ठेके, पीस रेट, कैजुअल, अपरेण्टिस और अस्थाई श्रमिकों से अधिकतर काम लिया जाता है। मज़दूर हितों के लिए आज सेक्टरगत और इलाक़ाई यूनियनें अधिक कारगर ढंग से लड़ सकती हैं। एक-एक कारख़ाने के धरातल पर आज मालिक-प्रशासन और पूँजीवादी तन्त्र का गँठजोड़ मज़दूरों पर हावी पड़ता है। यह बात पिछले क़रीब 30 साल के अनुभवों से साफ़ है।

उन्होंने आगे कहा कि हमारे संघर्ष दो क़दमों पर चलेंगे। आर्थिक संघर्ष; जिनमें काम के घण्टे, ईएसआई, ईपीएफ़, न्यूनतम मज़दूरी, सुरक्षा के समुचित इन्तज़ाम, बोनस, वेतन-भत्ते, रोज़गार इत्यादि से जुड़ी माँगों के लिए हमें आन्दोलन संगठित करने होंगे। देश-दुनिया के कोने-कोने में मज़दूर वर्ग अपने आर्थिक संघर्ष लड़ भी रहा है, किन्तु अधिकतर जगह पर नेतृत्व समझौतापरस्त है। मज़दूर आन्दोलन में आज अर्थवाद करने वाले और 20-30 परसेण्ट की दलाली खाने वाले हावी हैं। इनसे पीछा छुड़ाकर स्वतन्त्र नेतृत्व विकसित करना आर्थिक संघर्षों की जीत की भी पहली शर्त है। मज़दूर वर्ग का असल संघर्ष उसका राजनीतिक संघर्ष है, जो एक शोषणविहीन-समतामूलक समाज व्यवस्था के लिए होने वाला संघर्ष है जिसमें एक इंसान के द्वारा दूसरे इंसान का शोषण न हो सके। मज़दूर वर्ग पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंककर तथा समाजवादी व्यवस्था क़ायम करके ही ऐसा कर सकता है। जब तक पूँजीवाद रहेगा तब तक होने वाले आर्थिक संघर्ष तो साँस लेने के समान हैं, किन्तु असल लड़ाई शोषण के हर रूप के ख़ात्मे के लिए होनी चाहिए। मई दिवस का सच्चा सन्देश यही है कि हम अपने शानदार अतीत से प्रेरणा लेकर भविष्य की दिशा का सन्धान करें। मई दिवस के शहीदों को भी हमारी यही सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है!

बिगुल संवाददाता
रोहतक, हरियाणा।

हरियाणा के नगर पालिका, नगर निगम और नगर परिषदों के कर्मचारी हड़ताल पर

पूरे हरियाणा में ही नगर पालिका-नगर निगम और नगर परिषदों से जुड़े हज़ारों कर्मचारी हड़ताल पर चले गये हैं। यह रिपोर्ट लिखे जाने तक हड़ताल अपने 8वें दिन में प्रवेश कर चुकी है। हरियाणा की नगर पालिकाओं, नगर निगमों और नगर परिषदों में क़रीबन 30-32 हज़ार कर्मचारी हैं। इन कर्मचारियों में पक्के कर्मचारियों की संख्या बेहद कम है; ज़्यादातर कच्चे, डीसी रेट पर, ऐडहॉक पर तथा ठेके पर हैं। ये कर्मचारी विभिन्न प्रकार के कामों को सम्हालते हैं। इनमें विभिन्न तरह के कर्मचारी हैं जैसे सफ़ाईकर्मी, माली, लिपिक, बेलदार, चौकीदार, चपरासी, अग्निशमन सम्हालने वाले, स्वास्थ्यकर्मी, इलेक्ट्रिशियन, ऑपरेटर इत्यादि। कर्मचारी ज़्यादा कुछ नहीं माँग रहे हैं। उनकी माँग बस यही है कि हरियाणा की भाजपा सरकार ने अपने चुनावी घोषणापत्र में कर्मचारियों के लिए जो वायदे किये थे, उन्हें वह पूरा करे।

ज्ञात हो कि केन्द्र की तरह राज्य स्तर पर भी भजपा ने जनता से लोकलुभावन वायदे किये थे। सरकार बनने के चार साल बाद चुनावी घोषणापत्र गपबाजियों से भरे हुए पुलिन्दे प्रतीत हो रहे हैं। अब जबकि हरियाणा में सरकार को बने हुए 4 साल होने को हैं, तो आम जनता का सरकार की नीतियों और कारगुजारियों पर सवाल खड़े करना लाज़िमी है। भाजपा ने कच्चे कर्मचारियों को पक्का करने, वेतन बढ़ाने, सुविधाएँ देने, हर साल लाखों नये रोज़गार सृजित करने जैसे सैकड़ों वायदे कर्मचारियों से किये थे। किन्तु अब भाजपा के नेता कान में रुई-तेल डालकर सो रहे हैं। किये गये वायदे पूरे करना तो दूर कर्मचारियों के आर्थिक हालात और भी खस्ता करने पर भाजपा सरकार कटिबद्ध दिखायी दे रही है। हर विभाग को धीरे-धीरे ठेकेदारों के हाथों में सौंपा जा रहा है। हरियाणा लोक सेवा चयन आयोग से लेकर तमाम विभागों में घपलों-घोटालों का बोलबाला है। हर जगह की तरह हरियाणा में नगर निगम, नगर पालिका और नगर परिषद के तहत आने वाले सफ़ाई कर्मचारियों के हालात सबसे खस्ता हैं।

बिगुल की टीम के सदस्य जब रोहतक में हड़तालरत कर्मचारियों के बीच गये तो उन्होंने कई अन्दर की बातें सामने रखीं। एक ठेकेदार के तहत काम करने वाले सफ़ाई कर्मचारी ने नाम न बताने की शर्त पर बताया कि ठेकेदार मनमाने ढंग से पैसे काटकर तनख्वाह देता है। ठेकेदार के तहत काम करने वाले सफ़ाई कर्मचारी को महीने में कुल दो दिन का आराम मिलता है, जबकि असल में साप्ताहिक अवकाश होना चाहिए। 2 दिन से अधिक यदि कोई सफ़ाईकर्मी काम पर नहीं जाता, तो ठेकेदार 300 के हिसाब से प्रत्येक दिन की राशि अपनी जेब में डाल लेटा है। वहीं विभाग में 14-15 सालों से भी बहुत से कच्चे कर्मचारी काम कर रहे हैं। स्थायी प्रकृति के काम में ठेकेदारी प्रथा और कच्चे काम को ख़ुद भारत के संविधान का 1971 एक्ट नकारता है, किन्तु यहाँ पर धड़ल्ले से इस क़ानून की धज्जियाँ ख़ुद सरकारें उड़ाती हैं। एक तरफ़ न्यायालय समान काम के लिए समान वेतन की बात करता है, दूसरी तरफ़ समान काम करने वाले श्रमिकों की आय और सुविधाओं में ज़मीन-आसमान का अन्तर होता है। हरियाणा में सफ़ाई कर्मचारियों को झाड़ू भत्ते के नाम 5 रुपये थमा दिये जाते हैं। अब यह सोचने की बात है कि 5 रुपये में आज के समय में क्या आता है!

भाजपा एक तरफ़ स्वदेशी का राग अलापती नहीं थकती, दूसरी और सफ़ाई तक का ठेका विदेशी कम्पनियों को दे रही है। ये कम्पनियाँ देसी ठेकेदारों से साँठ-गाँठ करके न केवल कर्मचारियों का मनमाना शोषण करती हैं, बल्कि नागरिकों से भी मनमाने पैसे ऐंठती हैं। स्मार्ट सिटी विकसित करने का कार्यक्रम भी पूरी तरह से हर चीज़ को बिकाऊ माल में तब्दील करने का कार्यक्रम है। हरियाणा के नगर पालिका, नगर परिषदों और नगर निगमों के तहत यानी प्रदेश के 80 शहरों और 6,754 गाँवों में क़रीबन 25 हज़ार सफ़ाई कर्मचारी काम करते हैं। हरियाणा की ढाई करोड़ आबादी के लिहाज़ से आबादी के अनुपात में 62 हज़ार सफ़ाई कर्मचारी होने चाहिए। सरकार के स्वच्छ भारत अभियान के ढोंग की असलियत यहीं पर जनता के सामने आ जाती है। साफ़-सुथरी जगह पर झाड़ू लेकर फ़ोटो खिंचा लेना एक बात है और हर रोज़ गन्दगी, बदबू, सड़ान्ध से जूझ रहे कर्मचारियों को मूलभूत सुविधाएँ देना दूसरी बात है। बिना दस्तानों, मास्क, बूट, सुरक्षा उपकरणों के चलते कितने ही कर्मचारी बीमारी का शिकार होते हैं तथा बिना पर्याप्त सुरक्षा उपकरणों के कितने ही ज़हरीली गैस के कारण अपनी जान से

(पेज 2 पर जारी)

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस पर पूँजीवादी शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष जारी रखने का संकल्प लिया

लुधियाना में अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के महान दिन पर मज़दूर पुस्तकालय, ईडब्ल्यूएस कालोनी (ताजपुर रोड) पर मज़दूर संगठनों द्वारा मज़दूर दिवस सम्मेलन का आयोजन किया गया। सैकड़ों मज़दूरों ने मई दिवस के मज़दूर शहीदों – अल्बर्ट पार्सन्स, अगस्त स्पाईस, एडॉल्फ़ फ़िशर, जॉर्ज एंजिल, और लूईस लिंग को भावभिन्नी श्रद्धांजलि भेंट की और अपने अधिकारों के लिए पूँजीवादी लूट-शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष जारी रखने का संकल्प लिया। "मई दिवस के शहीदों को लाल सलाम", "दुनिया के मज़दूरो एक हो!", "अमर शहीदों का पैग़ाम, जारी रखना है संग्राम", "इंक़लाब जिन्दाबाद", आदि गगनभेदी नारों के साथ मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी लाल झण्डा फहराया गया। मई दिवस के शहीदों की याद में दो मिनट का मौन रखा गया।

सम्मेलन को कारख़ाना मज़दूर यूनियन के अध्यक्ष लखविन्दर, टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के अध्यक्ष राजविन्दर, स्त्री मज़दूर संगठन की बलजीत, नौजवान भारत सभा के सचिव कुलविन्दर ने सम्बोधित किया। क्रान्तिकारी सांस्कृतिक मंच 'दस्तक' द्वारा शहीद भगत सिंह के जेल जीवन के अन्तिम दिनों के बारे में दविन्दर दमन का लिखा नाटक 'छिपने से पहले' पेश किया गया। दस्तक द्वारा क्रान्तिकारी गीत भी पेश किये गये।

वक्ताओं ने कहा कि अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस मनाने को रस्मपूर्ति के तौर पर नहीं लिया जाना चाहिए। मई दिवस दुनिया के मज़दूरों को देश, धर्म, जाति, भाषा, भेष, रंग, नस्ल के नाम पर बाँटने वालों के ख़िलाफ़ एक वर्ग के तौर पर एकजुट होने, पूँजीवादी लूट-शोषण के ख़िलाफ़ व्यापक संघर्ष छेड़ने का आह्वान करता है।

इस वक़्त पूरी दुनिया में मज़दूर सहित अन्य तमाम मेहनतकश लोगों का पूँजीपतियों-साम्राज्यवादियों द्वारा लुट-शोषण पहले से भी बहुत बढ़ गया है। वक्ताओं ने कहा कि भारत में तो हालात और भी बदतर हैं। मज़दूरों को हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी इतनी आमदनी भी नहीं है कि अच्छा भोजन, रिहायश, स्वास्थ्य, शिक्षा, आदि ज़रूरतें भी पूरी हो सकें। भाजपा, कांग्रेस, अकाली दल, आप, सपा, बसपा सहित तमाम पूँजीवादी पार्टियों की उदारीकरण-निजीकरण-भूमण्डलीकरण की नीतियों के तहत आठ घण्टे दिहाड़ी, वेतन, हादसों व बीमारियों से सुरक्षा के इन्तज़ाम, पीएफ़, बोनस, छुट्टियाँ, काम की गारण्टी, यूनियन बनाने आदि सहित तमाम श्रम अधिकारों का हनन हो रहा है। काले क़ानून लागू करके जनवादी अधिकारों को कुचला जा रहा है। धार्मिक कट्टरपन्थी जनता को आपस में बाँटकर जनता का ध्यान वास्तविक मुद्दों से भटकाने में पूरे जोर-शोर से लगे हुए हैं। अल्पसंख्यकों, महिलाओं, आदिवासियों, दलितों पर हमले हो रहे हैं। जनता पर पूँजीपति वर्ग का हमला और भी तेज़ हो गया है।

वक्ताओं ने कहा कि लोगों को आपसी भाईचारा और सद्भावना क़ायम करनी होगी। वर्गीय एकता मज़बूत करनी होगी। बुनियादी ज़रूरतों से जुड़े अधिकारों के लिए संघर्ष तेज़ करना होगा।

पूँजीवादी व्यवस्था दुनिया के मेहनतकशों को ग़रीबी-बदहाली, दमन, युद्ध तबाही, धर्म-नस्ल-देश-जाति-क्षेत्र के नाम पर नफ़रत व क़त्लेआम आदि के सिवा और कुछ नहीं दे सकती। अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि पूँजीवादी शोषण के ख़ात्मे के लिए मई दिवस का पैग़ाम हर मज़दूर, हर मेहनतकश तक पहुँचाया जाये।

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस पर **पूर्वी उत्तर प्रदेश** में बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से 26 अप्रैल से 1 मई तक 'मई दिवस स्मृति संकल्प सप्ताह' का आयोजन किया गया। 'मई दिवस स्मृति संकल्प सप्ताह' के दौरान इलाहाबाद के सिविल लाइन्स स्थित बिजली विभाग, डाकघर, प्रयाग रेलवे स्टेशन, अल्लापुर लेबर चौराहा और राजकीय मुद्रणालय में नुक्कड़ सभाओं, नुक्कड़ नाटक और क्रान्तिकारी गीतों के ज़रिये कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। बिगुल मज़दूर दस्ता की गोरखपुर इकाई ने गोरखपुर स्थित पूर्वोत्तर रेलवे के 'यान्त्रिक कारख़ाना' में पोस्टर प्रदर्शनी लगायी तथा मोहरीपुर औद्योगिक इलाक़े में पैदल मार्च निकालकर नुक्कड़ सभाएँ की गयीं। बिगुल मज़दूर दस्ता की उरई (जालौन) की इकाई ने माधोगढ़ क्षेत्र के चाकी, भंगा, सिरसादोगड़ी और राजपुरा गाँवों में सभाओं के ज़रिये मई दिवस की विरासत और आज की परिस्थितियों पर चर्चा की गयी। बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से अम्बेडकरनगर में मुड़ियारी, कसमा का पूरा, मिश्रौलिया और टण्डवा शुक्ल गाँव में सभाएँ की गयीं। 1 मई को गोरखपुर के बरगदवाँ औद्योगिक क्षेत्र स्थित शिव मन्दिर पर सभा की गयी। सभा को बिगुल मज़दूर दस्ता और टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन के प्रतिनिधियों ने सम्बोधित किया। इस दौरान क्रान्तिकारी गीत गाये गये और बरगदवाँ और मोहरीपुर के इलाक़े में जुलूस निकाला गया। मऊ में वामपन्थी मोर्चा की ओर से चौक से आजमगढ़ मोड़ जुलूस निकाला गया। जुलूस में बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रतिनिधियों ने भागीदारी की। जुलूस के बाद बिजली विभाग के कम्पाउण्ड में सभा की गयी। 1 मई को बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से 'अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस' के अवसर पर गवर्नमेण्ट प्रेस स्थित श्रम हितकारी केन्द्र के सभागार में सभा का आयोजन किया गया। सभा से पूर्व एकलव्य चौराहे से एजी ऑफ़िस के बीच नुक्कड़ सभाएँ करके पर्चे वितरित किये गये। कार्यक्रम की शुरुआत 'तस्वीर बदल दो दुनिया की' से की गयी। सभा के दौरान बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रसेन ने कहा कि मई दिवस के शहीदों की क़ुरबानियों और पूरी दुनिया के मज़दूर आन्दोलनों के दबाव के बाद ही 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे आराम, आठ घण्टे मनोरंजन' का क़ानूनी अधिकार प्राप्त हुआ था। आज के समय में जब पूरी दुनिया भयंकर आर्थिक संकट का शिकार है, एक-एक करके सभी हक़ों-अधिकारों में कटौती शुरू हो गयी है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले करोड़ों मज़दूरों के लिए आठ घण्टे काम का नियम केवल किताबी बात है। श्रम क़ानूनों में संशोधन करके मोदी सरकार ने रही-सही सुरक्षा को भी छीनकर पूँजी की लूट के सामने खुला छोड़ दिया है। न्यूनतम वेतन, ओवरटाइम के डबल रेट समेत ईएसआई/ईपीएफ़ आदि सुविधाएँ कहीं भी हासिल नहीं हैं। सरकारी क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों के ऊपर भी असुरक्षा की तलवार लटक रही है। नयी पेंशन नीति, 50 साल की उम्र में सीआरएस जैसे फ़ैसलों के रूप में कर्मचारियों के हक़ों पर होने वाले हमले रोज़ बढ़ रहे हैं। ऐसे समय में इन नीतियों के ख़िलाफ़ मज़दूरों, कर्मचारियों और छात्रों की एक व्यापक एकजुटता बनाने के साथ ही फासीवाद के मुहाने पर खड़ी दुनिया को एक नये समाजवादी भविष्य की दिशा में मोड़ना आज के समय का एक अहम कार्यभार है। मई दिवस के शहीदों की विरासत इस सदी को निर्णायक सदी में बदलने के लिए प्रेरणा स्रोत है। सभा को राज्य कर्मचारी संयुक्त परिषद के जिला महामन्त्री विनोद कुमार पाण्डेय, नलकूप मण्डल इलाहाबाद के मण्डल अध्यक्ष कपिल कुमार, दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी संघ के प्रेमचन्द्र 'क्रान्तिकारी', गवर्नमेण्ट प्रेस इम्प्लाइज एसोसिएशन के अध्यक्ष रमेश शंकर, ध्रुव नारायण समेत विभिन्न ट्रेड यूनियनों और जनसंगठनों के प्रतिनिधियों ने सम्बोधित किया। कार्यक्रम का संचालन एएन सिंह ने किया। सभा की अध्यक्षता प्रिन्टिंग एण्ड स्टेशनरी मिनिस्टीरियल एसोसिएशन के अध्यक्ष रामसुमेर ने की। कार्यक्रम के दौरान क्रान्तिकारी गीत 'हम मेहनत करने वाले', 'आँखों में हमारी नयी दुनिया के ख़वाब हैं', 'हम मेहनतकश जग वालों से', 'बड़ी-बड़ी कोठिया सजाये पूँजीपतिया' आदि गीत गाये और नुक्कड़ नाटक 'मशीन' प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम का समापन गवर्नमेण्ट प्रेस से एजी ऑफ़िस तक जुलूस निकालकर किया गया।

मई दिवस के अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा **नोएडा** के पास बहरामपुर गाँव के बाहर, मज़दूरों के बीच मई दिवस का पर्चा वितरित किया गया। पर्चा वितरण के दौरान मज़दूरों से बातचीत हुई जिसमें उन्होंने बताया कि फ़ैक्टरियों-कारख़ानों में हालात बहुत खराब हैं। कम्पनी में ओवरटाइम न करो तो नौकरी से निकालने की धमकी दी जाती है। बारह-बारह घण्टे काम करने के बावजूद भी 8-9 हज़ार ही कमा पा रहे हैं। महँगाई इतनी बढ़ गयी है कि घर-परिवार का गुज़ारा भी नहीं हो पा रहा है। 2014 में मोदी सरकार के द्वारा दिखाये गये अच्छे दिनों के सपने भी अब बुरे दिनों की हक़ीकत ही दिखाते हैं। उन्होंने बताया कि आज मई दिवस के दिन भी काम पर बुलाया गया है। इन सारी बातों का गुस्सा मज़दूरों के बीच दिखायी दे रहा था। वहीं मौजूद कुछ मज़दूरों ने बताया कि नोएडा की कई कम्पनियों में मज़दूर यूनियनें भी हैं लेकिन मई दिवस के मौक़े पर काम पर बुलाने पर किसी भी यूनियन की मज़दूरों के हक़ में कहीं कोई आवाज़ भी नहीं सुनायी देती। बिगुल के कार्यकर्ताओं ने मई दिवस का महत्व बताते हुए कहा कि इन हालातों को बदलने के लिए किसी भी चुनावबाज़ पार्टी या दलाल यूनियनों की पूँछ पकड़कर चलने से कुछ नहीं होगा। आज ज़रूरत यह है कि सभी मज़दूरों-मेहनतकशों को नये सिरे से अपने आप को संगठित करना होगा और क्रान्तिकारी संगठन व पार्टी का निर्माण करना होगा, जो सच्चे अर्थों में मज़दूरों के हक़ में लड़ते हुए इस पूँजीवादी व्यवस्था का ही ख़ात्मा करे जिसने मज़दूरों को पूँजी का गुलाम बना रखा है।

(पेज 6 पर जारी)

वाराणसी में फ्लाईओवर गिरने से कम से कम 20 लोगों की मौत

यह कोई हादसा नहीं, क्रूर हत्या है जिसके अपराधियों को बचाने के लिए सरकार मुस्तैद है

बनारस में निर्माणाधीन पुल के दो बीम गिरने से कम से कम बीस लोग मौत के शिकार हो गये। हालाँकि स्थानीय लोगों के अनुसार मरने वालों की संख्या इससे कहीं अधिक थी। हर घटना की तरह इस घटना में भी असली वजह को लापरवाही या हादसा जैसे शब्दों की आड़ में छिपाया जा रहा है। मगर वास्तव में यह लापरवाही नहीं बल्कि एक आपराधिक कृत्य है। इसके पहले भी सरकार, अफ़सरों व ठेकेदारों का गँठजोड़, क़ानूनी-गैरक़ानूनी तौर-तरीक़ों के ज़रिये पैसे कमाने की हवस सैकड़ो लोगो की ज़िन्दगियाँ निगल चुकी है। इस भयानक घटना के बाद बेशर्मी की हद यह है कि मृतकों की संख्या को बहुत कम करके दिखाया जा रहा है। सरकार व मीडिया के मुताबिक़ केवल 20 लोगो की मौत हुई है तथा 30 से ज़्यादा लोग घायल हुए हैं, जबकि मरने वालो की संख्या इससे कई गुना ज़्यादा है। इसका अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि जिस समय यह घटना हुई, उस समय वहाँ कार्यरत मज़दूरों के अलावा भारी ट्रैफ़िक भी था। कंक्रीट की बीम के नीचे एक बस, कई जीप, कार तथा ऑटो और दो पहिया वाहन घण्टों दबे रहे।

प्रधानमंत्री के निर्वाचन क्षेत्र में भारी असन्तोष के दबाव में सरकार ने इस आपराधिक कृत्य की रिपोर्ट तो लिखवाई लेकिन "अज्ञात ठेकेदार" के नाम से। जबकि सभी जानते हैं कि ठेके में मंत्री नितिन गडकरी की फ़र्म 'गडकरी सन्स' भी शामिल थी।

वस्तुतः इन घटनाओं की आम वजह सरकार, अफ़सरों और ठेकेदार की लूट की हवस है। तमाम सूत्रों से पता चला कि सेतु निगम ने इस पुल का काम मन्त्रियों के क़रीबियों को बाँटा जिस पर 14% कमीशन लिया गया। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सेतु निगम (यही संस्था इस पुल का निर्माण कर रही है) के प्रबन्ध निदेशक राजन मित्तल का इस हादसे के बाद बयान आया कि पुल आँधी की वजह से गिरा। यह वही व्यक्ति है जिस पर पहले भी भ्रष्टाचार के आरोप लगते रहे हैं, और इसके ख़िलाफ़ जाँच के आदेश भी हुए हैं। लेकिन भाजपा सरकार ने न सिर्फ़ इस आदमी को सेतु निगम का अध्यक्ष बनाया, बल्कि इसे उत्तर प्रदेश निर्माण निगम का अतिरिक्त भार भी सौंप दिया। इतना ही नहीं, हादसे के बाद गिरे हुए कंक्रीट के बीम को उठाने के लिए सेतु निगम ने कम्प्रेशर क्रेन तक उपलब्ध नहीं करवायी, जिस वजह से बचाव का काम बहुत देर से शुरू हो पाया और इसी वजह से कई जानें जो बच सकती थी, वे नहीं बचायी जा सकीं।

इस घटना की दूसरी वजह 2019 के लिए भाजपा द्वारा की जा रही चुनावी तैयारी के दबाव में तमाम साइटों पर की जाने वाली जल्दबाज़ी व लापरवाहियाँ हैं। सेतु निगम के एक अधिकारी ने सार्वजनिक बयान दिया कि निर्धारित समय पर काम पूरा करने का दबाव है।

इलाहाबाद में भी चार फ़्लाईओवर बनाये जा रहे हैं, जहाँ पर सुरक्षा मानकों पर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है। ऊपर से केन्द्र और राज्य में बैठी भाजपा सरकार भी दबाव बना रही है कि किसी भी हालत में ब्रिज निर्माण के काम को साल के अन्त तक पूरा कर लिया जाये, ताकि कुम्भ मेले में आये लोगों को इलाहाबाद की चकाचौंध दिखाकर 2019 के आम चुनाव के लिए वोट बैंक तैयार किया जा सके। लेकिन अभी निर्माणस्थल को देखकर यही लगता है कि कम से कम डेढ़-दो साल ज़रूर लगेगा। अब अगर काम की गति बहुत अधिक बढ़ाई जायेगी तो ग़लतियाँ तो होंगी ही और इसकी भरपाई इन जगहों पर कम करने वाले मज़दूर और आम जनता अपनी ज़िन्दगी खोकर पूरा करेगी।

नेशनल हाइवे अथॉरिटी ऑफ़ इण्डिया के सेफ़्टी मैन्युअल में इस बात का साफ़ तौर पर ज़िक्र है कि जहाँ कहीं भी इस तरह के निर्माण-कार्य होते हैं, वहाँ ट्रैफ़िक के लिए डाइवर्ट रूट का इन्तज़ाम किया जाता है और आस-पास बैरीकेडिंग की जाती है और ट्रैफ़िक को पूरी तरह से रोक दिया जाता है। और अगर दिन में ट्रैफ़िक को नहीं रोका जा सकता है, तो निर्माण-कार्य रात के समय कराया जाना चाहिए। निर्माण-स्थल पर मज़दूरों, कारीगरों, इंजीनियर और अफ़सरों के अलावा किसी को जाने की इज़ाज़त नहीं होती है, लेकिन बनारस में मामला ठीक इसके उलट था, कंस्ट्रक्शन के समय भी वहाँ पर ट्रैफ़िक नहीं रोका गया था और सुरक्षा का भी कोई इन्तज़ाम नहीं था।

भाजपाइयों के लग्गू-भग्गू व संघी भक्तों के अलावा बिकाऊ मीडिया और नेता बेशर्मी भरे बयान दे रहे हैं। उदाहरण के लिए दैनिक जागरण अख़बार ने एक ख़बर छापी थी, जिसमें इस घटना के लिए ग्रहों को ज़िम्मेदार ठहराया था और कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष राज बब्बर ने इस घटना की वजह विश्वनाथ मन्दिर कोरिडोर में टूटे विनायक मन्दिरों का श्राप बताया। दूसरी तरफ मोदी और योगी कर्नाटक में विधायकों के ख़रीद-फ़रोख्त में इतने व्यस्त हैं कि घड़ियाली आँसू बहाने का भी समय नहीं निकाल पा रहे हैं।

गर्डर गिरने की घटनाएँ अब आम होती चली जा रही हैं। कुछ दिन पहले इलाहाबाद के रामबाग़ के इलाक़े में निर्माणाधीन पुल में इस्तेमाल लोहे की गर्डर गिर गयी लेकिन उसमें किसी के हताहत होने की कोई ख़बर नहीं थी। 2016 में ऐसी ही घटना पश्चिम बंगाल में हुई थी, जिसमें 27 लोगों की मौत हो गयी थी और सैकड़ों घायल हो गये थे। 2012 में उत्तराखण्ड में ब्रिज गर्डर गिरने से 12 लोगों की जान चली गयी थी। 2016 में ठीक ऐसी ही एक घटना लखनऊ में हुई जिसमें निर्माणाधीन ब्रिज के कॉलम की शटरिंग गिरने से दर्जनों मज़दूर घायल हो गये थे। अकेले उत्तर प्रदेश में पिछले 10 वर्षों के दौरान ऐसी 5 घटनाएँ हो चुकी हैं और हर घटना के बाद नेता-मन्त्री और नौकरशाह गला फाड़के चिल्लाते हैं कि इस घटना से सबक़ लिया जायेगा और आगे ऐसी घटनाओं पर रोक लगायी जाएगी, लेकिन ये सारी बातें हर बार लफ़्फ़ाज़ी ही साबित होती हैं। "सावधानी हटी, दुर्घटना घटी" जैसी तमाम बातें तो हर जगह लिखी मिल जायेंगी, लेकिन इसका पालन कहीं नहीं होता है। निर्माणस्थल पर काम करने वाले मज़दूरों के लिए न्यूनतम सुरक्षा का इन्तज़ाम तक नहीं होता है, जिसकी वजह से आये दिन मज़दूरों के साथ दुर्घटनाएँ होती रहती हैं लेकिन ये कभी ख़बर नहीं बन पाती हैं।

ब्रिज गर्डर के गिरने की दो-तीन वजहें हो सकती हैं। इसको समझने से पहले थोडा-सा ब्रिज इंजीनियरिंग को समझना होगा। बीम (गर्डर) दो तरह के होते हैं, पहला जो ब्रिज के लम्बाई की दिशा में होता है, जिसे लोंगीट्युडीनल गर्डर भी कहते हैं और दूसरा चौड़ाई की दिशा में होता है, जिसे क्रॉस गर्डर भी कहते हैं। गर्डर के ऊपरी हिस्से का भार ज़्यादा होता है, जिसके कारण इसका गुरुत्वाकर्षण केन्द्र बीच में न होकर थोड़ा-सा ऊपर होता है। कंक्रीट दबाव में मज़बूत होता है, लेकिन खिंचाव को नहीं झेल पाता था, इसीलिए गर्डर को किसी पिलर पर टिकाने से पहले प्री-स्ट्रेसिंग की जाती है। यह एक तकनीकी प्रक्रिया होती है जिससे गर्डर खिंचाव में भी मज़बूत हो जाता है और यह सुरक्षा की दृष्टि से भी ज़रूरी होता है, लेकिन इस प्रक्रिया में बीम का काण्टेक्ट एरिया कम हो जाता है, जिससे गर्डर के गिरने की सम्भावना बढ़ जाती है। इससे बचने के लिए गर्डर को तब तक अस्थाई रूप से बाँधके रखते हैं, जब तक कि उसे मज़बूत स्थाई सहारा न मिल जाये या फिर काम पूरा न हो जाये। लेकिन बनारस की घटना में काम को जल्दी से जल्दी पूरा करने के चक्कर में और पैसों को बचाने के लिए फ्रेम वर्क को गर्डर लगने के 7 दिन के अन्दर ही हटा लिया गया, जिसका ख़ामियाज़ा बेक़सूर लोगों को अपनी ज़िन्दगी गवाँ कर चुकाना पड़ा।

बनारस की घटना में हुआ यह कि पिल्लर्स पर पाँच सीधे बीम डाले गये, इन बीम को सपोर्ट देने वाले क्रॉस बीम के लिए सरिया का स्ट्रक्चर तो बनाया गया, लेकिन उसको कंक्रीट से भरने का काम 3 महीने से लटकाये रखा गया था। सुरक्षा की दृष्टि से देखे तो दोनों प्रकार के बीम को एक साथ रखना चाहिए। पिलर के जिस हिस्से पर ब्रिज गर्डर को रखा जाता है, उसे बेअरिंग कहा जाता है। पूरे ब्रिज पर लगने वाले लोड का सारा हिस्सा सबसे पहले बेअरिंग पर आता है। इसलिए इस हिस्से को थोडा-सा ऊँचा उठाकर ज़्यादा सरिया भर देते हैं। बेअरिंग को बनाने में अपेक्षाकृत ज़्यादा ख़र्च आता है और पैसा बचाने के लिए लगने वाले सरिया की गुणवत्ता को हल्का कर दिया जाता है। गर्डर के गिरने के तरीक़े को देखकर ही यह बात साफ़-साफ़ समझ में आ रही है कि ब्रिज का बेअरिंग फेल हो गया था और इसकी वजह थी - निर्माण में वर्षों से बरसात-खुली धूप में रखे सरिया और अन्य लौह सामग्रियों का इस्तेमाल किया जाना, जिनका संक्षरण हो गया था।

हर बार की तरह इस बार भी कुछ कर्मचारियों और अधिकारियों के सिर पर ठीकरा फोड़कर इस मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था को कठघरे में खड़ा होने से साफ़ बचा लिया जायेगा। वास्तव में मुनाफ़े पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था में इन घटनाओं से छुटकारा पाने और मानवता को केन्द्र में रखकर योजनाबद्ध तरीक़े से निर्माण और विकास की उम्मीद भी करना मूर्खता ही साबित होगी। इसके लिए समाजवादी आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था की ज़रूरत है, ये सभी घटनाएँ हमें बार-बार पूँजीवादी व्यवस्था की तबाही और समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के लिए क्रान्ति की ज़रूरत का एहसास करती हैं। आम लोगों की हत्यारी इस पूँजीवादी व्यवस्था को ही ढहाना होगा।

– अविनाश

चार क्रान्तिकारी संगठनों ने अमर शहीद सुखदेव का जन्मदिन मनाया

शहीद सुखदेव के जन्म स्थान नौघरा मोहल्ला में हुआ श्रद्धांजलि कार्यक्रम

15 मई को शहीद सुखदेव के जन्म स्थान नौघरा मोहल्ला, लुधियाना में बिगुल मज़दूर दस्ता, लोक मोर्चा पंजाब, इंक़लाबी केन्द्र पंजाब व इंक़लाबी लोक मोर्चा द्वारा संयुक्त तौर पर शहीद सुखदेव का जन्मदिन मनाया गया। घण्टाघर चौक के नज़दीक नगर निगम कार्यालय से लेकर नौघरा मोहल्ला तक पैदल मार्च किया गया। शहीद सुखदेव की यादगार पर लोगों ने श्रद्धांजलि फूल भेंट किये। इस अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता के राजविन्दर, लोक मोर्चा पंजाब के कस्तूरी लाल, इंक़लाबी केन्द्र पंजाब के नेता कंवलजीत खन्ना व इंक़लाबी लोक मोर्चा के विजय नारायण ने सम्बोधित किया।

वक्ताओं ने कहा कि उनके लिए शहीद सुखदेव को याद करना कोई रस्मपूर्ति नहीं है। क्रान्तिकारी शहीदों की कुर्बानियाँ मानवता की लूट, दमन, अन्याय के खिलाफ़ जूझने वालों के लिए हमेशा से प्रेरणा का स्रोत रही हैं। उन्होंने कहा - शहीद सुखदेव और उनके साथी सिर्फ़ अंग्रेज़ हुकूमत से आज़ादी के लिए नहीं लड़ रहे थे। शहीद सुखदेव व उनके साथियों के विचारों के जितने बड़े दुश्मन अंग्रेज़ हाकिम थे, उतने ही बड़े दुश्मन भारतीय हाकिम भी हैं।

वक्ताओं ने कहा कि सुखदेव का यह स्पष्ट मानना था कि सिर्फ़ अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्ति से ही मेहनतकशों की ज़िन्दगी बेहतर नहीं हो जायेगी, कि जब तक समाज के समूचे स्रोत-संसाधनों पर मेहनतकश लोगों का क़ब्ज़ा नहीं हो जाता तब तक जनता बदहाल ही रहेगी। वे समाज के स्रोत-संसाधनों पर चन्द धन्नाढ्यों का क़ब्ज़ा नहीं चाहते थे, बल्कि उनकी लड़ाई तो समाजवादी व्यवस्था क़ायम करने के लिए थी। सुखदेव ने लिखा था - "हिन्दुस्तानी सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के नाम से ही साफ़ पता चलता है कि क्रान्तिकारियों का आदर्श समाज-सत्तावादी प्रजातन्त्र की स्थापना करना है।"

वक्ताओं ने शहीद सुखदेव को धर्म, जाति, बिरादरी, क्षेत्र आदि से जोड़कर उनकी कुर्बानी के महत्व को कम करने व उनके विचारों पर पर्दा डालने की जाने-अनजाने में हो रही कोशिशों का विरोध करते हुए कहा कि उनकी लड़ाई तो समूची मानवता को हर तरह की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक गुलामी, लूट, दमन, अन्याय से मुक्त करने की थी। मेहतनकश लोगों का ग़रीबी-बदहाली, बेरोज़गारी से छुटकारा धर्मों, जातियों, क्षेत्रों आदि के भेद मिटाकर एकजुट होकर लुटेरे हाकिमों के खिलाफ़ क्रान्तिकारी वर्ग संघर्ष के ज़रिये ही हो सकता है।

वक्ताओं ने कहा कि अमीरी-ग़रीबी की बढ़ती खाई, बेरोज़गारी, इलाज योग्य बीमारियों से भी मौतें, बाल मज़दूरी, स्त्रियों के विरुद्ध बढ़ते अपराध, ग़रीबों की शिक्षा से बढ़ती दूरी, वोटों के लिए लोगों को धर्म-जाति आधारित साम्प्रदायिकता की आग में झोंक देने की तेज़ हो रही घिनौनी साजिशें, क़दम-क़दम पर साधारण जनता पर बढ़ता जा रहा ज़ोर-जुल्म - यही वो आज़ादी है जिसके गुणगान देश के हाकिम पिछले 70 वर्षों से करते आये हैं। देशी-विदेशी धन्नासेठ मालामाल हैं, लेकिन लोग कंगाल हैं। ग़रीबी-बदहाली के महासागर में अमीरी के कुछ टापू - यही है आज़ाद भारत की भयानक तस्वीर। जनता के हक़ों के लिए संघर्षशील लोगों को देशद्रोही क़रार देकर दमन किया जा रहा है। जब से केन्द्र में मोदी सरकार बनी है तब से जनाधिकारों पर हमला और भी तेज़ हो गया है। उन्होंने कहा कि शहीद सुखदेव और उनके साथियों के सपनों का समाज बनना अभी बाक़ी है। उन्होंने शहीद सुखदेव के जन्मदिन पर इंक़लाबी शहीदों की सोच अपनाने व फैलाने का प्रण करने व उनके सपनों के समाज के निर्माण की ज़ोरदार तैयारी में जुट जाने का आह्वान किया।

– बिगुल संवाददाता

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस पर पूँजीवादी शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष जारी रखने का संकल्प लिया

मई दिवस पर मज़दूरों ने किया वज़ीरपुर का चक्काजाम!

दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन और बिगुल मज़दूर दस्ता के हड़ताली दस्तो ने वज़ीरपुर की फैक्टरियों में जाकर काम बन्द करवाया। जैसे-जैसे हड़ताली दस्ता एक फैक्ट्री में जाकर काम बंद करवाता वैसे-वैसे फैक्टरियों से बाहर निकल मज़दूर हड़ताली दस्ते में शामिल हो जाते और हड़ताली दस्ते का कारवां आगे बढ़ जाता। मज़दूरों ने अपने साथियों के आह्वान पर फैक्ट्री से बाहर निकल अपना लाल-झण्डा थामा और मई दिवस के शहीदों को याद करते हुए नारे बुलंद किये। कई फॅक्टरी मालिकों और मुनीमों ने मज़दूरों को फैक्ट्री से बाहर जाने से रोकने का असफल प्रयास भी किया। कई जगह फैक्ट्री मालिकों से हड़ताली दस्ते के सदस्यों की झड़प भी हुई लेकिन अपनी एकता के दम पर मज़दूरों ने फैक्टरियों में काम ठप्प कर वज़ीरपुर का चक्काजाम कर दिया। सभी मज़दूरों ने मिलकर वज़ीरपुर में मई दिवस के अवसर पर एक विशाल रैली निकाली। वज़ीरपुर के चौराहों और फैक्टरियों के बाहर नुक्कड़ सभाएं कर मज़दूरों को मई दिवस के इतिहास और मज़दूर वर्ग के लिए इस दिन के महत्व के बारे में बताया गया। मई दिवस वास्तव में मज़दूर वर्ग का असली त्यौहार है आज ही के दिन लगभग 133 साल पहले अमेरिका के शिकागो शहर में मज़दूरों ने 8 घण्टे काम की अपनी राजनीतिक माँग को लेकर संघर्ष शुरू किया। जिसके बाद मई दिवस से शुरू हुआ संघर्ष अमरीका से निकल पूरे विश्व में फैल गया और अपनी इसी राजनीतिक माँग के बैनर तले मज़दूर वर्ग ने खुद को लामबंद किया। मई दिवस के शहीदों पार्सन्स, स्पाइस, फिशर, एंजिल, नीबे, शवाब, फ़ील्डेन को याद करते मज़दूरों ने एकजुट हो अपने हक़ों के लिए संघर्ष करने का संकल्प लेते हुए उन्हें श्रद्धांजलि दी। मई दिवस के नारे '8 घण्टे काम, 8 घण्टे आराम और 8 घण्टे मनोरंजन' और इन्सान के लायक जीवन जीने के अधिकार को हासिल करने के लिए संघर्ष करने का प्रण लिया।

दिल्ली के **बवाना औद्योगिक क्षेत्र** में हनुमान चौक के पास मई दिवस सप्ताह के तहत सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में 'देश को आगे बढ़ाओ' नाटक का मंचन किया गया औए साथ ही क्रान्तिकारी गीतों को प्रस्तुति भी की गई। बिगुल मज़दूर दस्ता के सनी ने मई दिवस के राजनीतिक महत्व पर बात रखते हुए कहा कि मई दिवस मज़दूरों के संघर्ष का वो स्वर्णिम अध्याय है जब मज़दूरों ने एकजुट होकर पूरे पूँजीपति वर्ग के सामने अपनी राजनीतिक माँग रखी थी। बवाना औद्योगिक मज़दूर यूनियन के भारत ने सभा मे बात रखते हुए कहा कि मई दिवस का इतिहास जानना और मई दिवस के शहीदों की कुर्बानी को याद करते हुए आज यह हमारा कर्तव्य बन जाता है कि हम अपने संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए एकजुट हो।आज के कार्यक्रम में मज़दूरों ने बेहद उत्साह के साथ शिरकत की।

दिल्ली की **शाहबाद डेरी** में मई दिवस सप्ताह के तहत सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। आज के इस कार्यक्रम में शाहबाद डेरी के

निवासियों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी की। सभा की शुरुआत में दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन की अदिति ने मई दिवस के बारे में बात रखते हुए मई दिवस के शहीदों को याद कर आज के हालातों के ख़िलाफ़ एकजुट हो कर संघर्ष करने के लिए आगे बढ़ने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया। बिगुल मज़दूर

दस्ता के प्रेमप्रकाश ने सभा में शामिल सभी लोगों को शिकागों से शुरु हुई 'काम के घंटे 8 करो' आंदोलन के इतिहास से अवगत करवाया। उन्होंने मज़दूर वर्ग के उस शानदार संघर्ष के बारे में बताया जिसके चलते पूरे पूँजीपति वर्ग को मज़दूरों की इस राजनीतिक माँग के आगे सिर झुकाना पड़ा था। सांस्कृतिक संध्या में क्रान्तिकारी गीतों के साथ एक नाटक का मंचन भी किया गया। दिल्ली घरेलू कामगार यूनियन के साथ बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन, करावल नगर मज़दूर यूनियन और दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन ने भी शिरकत की।

बिगुल मजदूर दस्ता द्वारा मई दिवस सप्ताह के तहत **पटना** के विभिन्न इलाकों में नुक्कड़ सभाओं का आयोजन किया गया। पटना के मुन्ना चौक और मलाही पकड़ी स्थित लेबर चौकों पर नुक्कड़ सभाओं का आयोजन किया गया व परचा वितरण भी किया गया। बाटा फैक्टरी के मज़दूरों के बीच मई दिवस के शहीदों को याद करते हुए नुक्कड़ सभा की गयी एवं पर्चे बाँटे गये।

मई दिवस के अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता की टोली मई दिवस का पैग़ाम लेकर **लखनऊ के तालटकटोरा औद्योगिक क्षेत्र** और गढ़ी कनौरा रिहायशी इलाके में पहुँची। इस औद्योगिक क्षेत्र में 100 से अधिक फैक्ट्रियाँ हैं जिनमें मज़दूर 12-12 घंटे तक खटकर प्लाईवुड, डब्बे, प्लास्टिक सामान और मोमोज़ आदि बनाते हैं। मई दिवस के दिन भी सभी फैक्ट्रियों में काम बदस्तूर जारी रहा। शाम को जब एक फैक्ट्री के बाहर बिगुल मज़दूर दस्ता की टोली जनसभा कर रही थी तभी उस फैक्ट्री के भीतर से मैनेजमेंट का एक आदमी और इलाके के मालिकों की एसोसिएशन का एक कारकून आकर सभा को रोकने की कोशिश करने लगा। उसका कहना था कि मई दिवस का संदेश दीजिए लेकिन लाल पट्टी पहनकर क्रांतिकारी बातें मत कीजिए। लगभग सभी फैक्ट्रियों में मज़दूर अंदर ओवरटाइम पर काम कर रहे थे। जो मज़दूर वापस घर लौट रहे थे उन्होंने मई दिवस का संदेश सुना और पर्चे लिये। मई दिवस की पूर्व संध्या पर डालीगंज के लेबर चौक और खदरा में सभाएँ की गयीं और पर्चे बाँटे गये।

महाराष्ट्र के अहमदनगर में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस के अवसर पर नौजवान भारत सभा, बिगुल मजदूर दस्ता व क्रांतिकारी मजदूर मोर्चा की तरफ से लेबर चौक मजदूरों के बीच अभियान चलाया गया, पर्चे वितरित किये गये व क्रांतिकारी गीत पेश किये गये। शाम को सफाई कामगारों के बीच सिद्धार्थनगर इलाके में एक वृत्तचित्र दिखाया गया।

मई दिवस के अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा **रोशनाबाद (हरिद्वार)** के परमानंद विहार मज़दूर बस्ती में मई दिवस के शहीदों के संघर्षों और उनकी कुर्बानियों की याददिहानी को लेकर नुक्कड़ सभाएँ की गईं और व्यापक पर्चा वितरण किया गया। नुक्कड़ सभा में बात रखते हुए वक्ताओं ने कहा कि, मई दिवस पूरी दुनिया के मज़दूरों की वर्गीय एकजुटता और उनके राजनीतिक संघर्षों व आंदोलनों का प्रतीक दिवस है। यह मज़दूरों के गरिमामय जीवन,स्वाभिमान और वर्गीय राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्त करने वाला त्योहार है,जिसे दुनियाभर के मज़दूर बड़े ही धूमधाम से मनाते हैं। आज मई दिवस की विरासत और मई दिवस के शहीदों की कुर्बानियों को याद करने का मक़सद मज़दूरों के संघर्षों और आंदोलनों की परम्परा को आगे बढ़ाना है।

बहरोड़, अलवर में मई दिवस के मौक़े पर बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं द्वारा सोतानाला इण्डस्ट्रियल इलाक़े में पर्चा वितरण व सभाओं का आयोजन किया गया। सोतानाला इलाक़े में छोटी-बड़ी कई फ़ैक्टरियाँ स्थापित हैं। यहाँ मुख्यतः केमिकल, प्लास्टिक, पेपर, स्टोन, बीयर एवं शराब बनाने के कारख़ाने मौजूद हैं। इन कारख़ानों के आसपास मज़दूरों की छोटी-छोटी बसाहटें हैं, जिनमें अधिकतर बाहर से आये हुए मज़दूर रहा करते हैं। मज़दूर दिवस पर राज्य सरकार द्वारा जारी किये गयक सवैतनिक अवकाश बाबत नोटिफिकेशन के बावजूद अधिकतर फ़ैक्टरियों में काम चालू था। मज़दूरों ने बातचीत के दौरान बताया कि नयी स्थापित फ़ैक्टरियों को छोड़कर बाक़ी सभी में आज भी काम पर बुलाया गया है। अधिकांश मज़दूरों को तो यह तक नहीं पता था कि आज मज़दूर दिवस है। मज़दूरों ने बताया कि यहाँ हर फ़ैक्टरी में ज़्यादातर मज़दूर ठेकेदारों के तहत काम करते हैं। स्थायी मज़दूर तो गिने-चुने ही हैं। ज़्यादातर फ़ैक्टरियों में काम 12 घण्टे तक करना पड़ता है। वर्तमान में 8 घण्टे काम की जो मज़दूरी मिलती है, वो बहुत कम है। दुर्घटना हो जाने पर कोई सहायता राशि प्रदान नहीं की जाती। अगर मज़दूर मैनेजमेण्ट से कभी कोई छोटी सी माँग भी करते हैं तो उन्हें काम से निकाल देने की धमकी दी जाती है। बातचीत के दौरान मज़दूरों ने यूनियन बनाने की आवश्यकता को स्वीकार किया। पर्चे के अलावा कार्यकर्ताओं ने मज़दूरों को 'बिगुल' अख़बार से भी परिचित करवाया। बहुत से मज़दूरों ने अख़बार को पढ़ने की इच्छा जाहिर की।

– बिगुल डेस्क

उत्तर प्रदेश में शिक्षा और रोज़गार की बदहाली के विरुद्ध तीन जनसंगठनों का राज्यव्यापी अभियान

उत्तर प्रदेश में शिक्षा और रोज़गार की बदहाल स्थिति को देखते हुए नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन और जागरूक नागरिक मंच ने प्रदेशव्यापी 'शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान' शुरू किया है। इस अभियान के तहत 10-सूत्री माँगपत्रक पर प्रदेश भर में लाखों हस्ताक्षर कराये जा रहे हैं। भगतसिंह के शहादत दिवस 23 मार्च से शुरू हुए इस अभियान के तहत भगतसिंह के 111वें जन्मदिवस 28 सितम्बर को हज़ारों छात्र-युवा और नागरिक शिक्षा और रोज़गार से जुड़ी अपनी माँगों को लेकर सरकार के दरवाज़े पर दस्तक देंगे।

देश की सवा सौ करोड़ आबादी का छठवाँ हिस्सा उत्तर प्रदेश में बसता है और इसका क़रीब दो-तिहाई हिस्सा बच्चों-किशोरों और युवाओं का है। मगर जो बात किसी समाज की ताक़त होनी चाहिए, वह हमारे यहाँ समस्या बना दी गयी है। इस युवा आबादी की सबसे बड़ी ज़रूरत है - अच्छी शिक्षा और सम्मानजनक और सुरक्षित रोज़गार। लेकिन प्रदेश के आम घरों के बच्चे और युवा इनसे वंचित हैं।

उत्तर प्रदेश में शिक्षा की हालत का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि राज्य-भर के सरकारी स्कूलों में शिक्षकों के पौने तीन लाख पद बरसों से ख़ाली पड़े हैं। प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक अन्धाधुँध निजीकरण ने शिक्षा का ऐसा बाज़ार बना दिया है जहाँ आम घरों के बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा पाना नामुमकिन होता जा रहा है।

रोज़गार विभाग के अधिकारियों के अनुसार उत्तर प्रदेश में बेरोज़गारों की संख्या एक करोड़ तक पहुँच चुकी है (हिन्दुस्तान टाइम्स, 20 मार्च 2018)। रोज़गार कार्यालयों के दायरे से बाहर, साल में कुछ ही दिन या नाममात्र का रोज़गार करने वालों को भी जोड़ लें, तो यह आँकड़ा 4 करोड़ से ऊपर चला जायेगा। 70 लाख नौकरियाँ देने का चुनावी वायदा करके प्रदेश में सत्ता में आयी भाजपा सरकार ने जुमले उछालने के अलावा अब तक जो किया है उस गति से अभी के बेरोज़गारों को अगले 50 साल में भी रोज़गार नहीं मिलेगा। नये रोज़गार पैदा करना तो दूर, पहले से ख़ाली लाखों पदों पर भी भर्तियाँ नहीं हो रही हैं।

प्रदेश में सरकारें आती-जाती रही हैं लेकिन आबादी के अनुपात में रोज़गार के अवसर बढ़ने के बजाय कम होते जा रहे हैं। सरकारी नौकरियाँ नाममात्र के लिए निकल रही हैं, नियमित पदों पर ठेके से काम कराये जा रहे हैं और ख़ाली होने वाले पदों को भरा नहीं जा रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को बन्द करने या निजी हाथों में बेचने का सिलसिला जारी है। भारी दबाव में जो भर्तियाँ घोषित भी होती हैं, उन्हें तरह-तरह से वर्षों तक लटकाये रखा जाता है, भर्ती परीक्षाएँ होने के बाद भी पास होने वाले उम्मीदवारों को नियुक्तियाँ नहीं दी जातीं! करोड़ों युवाओं के जीवन का सबसे अच्छा समय भर्तियों के आवेदन करने, कोचिंग व तैयारी करने, परीक्षाएँ और साक्षात्कार देने में चौपट हो जाता है, इनके आर्थिक बोझ से परिवार की कमर टूट जाती है। हज़ारों युवा डिप्रेशन जैसे रोगों के शिकार हो जाते हैं, न जाने कितने हताशा-निराशा में आत्महत्या तक पहुँच जाते हैं। मार्च 2018 में संसद में दी गयी जानकारी के अनुसार 2014-16 के बीच देश में 26,500 युवाओं ने आत्महत्या कर ली। नेताओं, मन्त्रियों, नौकरशाहों की सुरक्षा और ऐयाशी पर ख़र्च होने वाले अरबों रुपये टैक्सों के रूप में हमारी जेबों से ही वसूले जाते हैं, तो क्या बदले में जनता को शिक्षा और रोज़गार की बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं मिलनी चाहिए?

उत्तर प्रदेश में शिक्षा और रोज़गार की भयावह स्थिति

सभी प्रमुख पार्टियों की सरकारें प्रदेश में राज कर चुकी हैं, लेकिन इन दो बुनियादी ज़रूरतों की हालत बद से बदतर ही होती गयी है। यहाँ सरकारी आँकड़ों के अनुसार (जो वास्तविक स्थिति से बहुत पीछे ही रहते हैं) बेरोज़गारी की दर 6.5 प्रतिशत है जोकि राष्ट्रीय दर 5.8 प्रतिशत से काफ़ी ज़्यादा है। श्रम मन्त्रालय के आँकड़ों के अनुसार 2015-16 में राष्ट्रीय स्तर पर हर 1000 व्यक्तियों में 37 बेरोज़गार थे जबकि उत्तर प्रदेश में हर 1000 व्यक्तियों पर 58 बेरोज़गार थे। 18 से 29 वर्ष के लोगों में यह आँकड़ा राष्ट्रीय स्तर पर 102 था तो उत्तर प्रदेश में 148 था! यानी रोज़गार की तलाश करने की उम्र में हर छठा व्यक्ति बेरोज़गार था। यही कारण है कि पिछले 15 वर्षों में रोज़गार की तलाश में क़रीब एक करोड़ लोग प्रदेश से बाहर जा चुके हैं जिनमें से ज़्यादातर बेहद कम वेतन पर प्रवासी मज़दूरों की ज़िन्दगी बिता रहे हैं।

स्कूल जाने वाले प्रदेश के क़रीब 2.74 करोड़ बच्चों में से आधे से अधिक सरकारी स्कूलों में जाते हैं। प्रदेश के सरकारी स्कूलों में लगभग दो लाख 75 हज़ार शिक्षकों के पद वर्षों से ख़ाली पड़े हैं। 10,187 प्राथमिक और 4895 उच्चतर प्राथमिक स्कूल तो ऐसे हैं जो केवल एक शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं। स्कूलों की हालत इतनी खस्ता है कि 55 प्रतिशत विद्यार्थी स्कूल जाते ही नहीं। स्कूलों की हालत सुधारने के बजाय सरकार अब हज़ारों सरकारी स्कूलों को ही बन्द करने की कोशिश कर रही है। ऊपर की कुछ प्रतिशत आबादी, जो साल-भर में 50 हज़ार से लेकर 5 लाख रुपये केवल एक बच्चे की फ़ीस पर ख़र्च कर सकती है, उसके लिए सारी सुविधाओं से लैस प्राइवेट स्कूल मौजूद हैं, लेकिन बाक़ी लोग निजी स्कूलों में अपने को लुटवाने के बाद भी अपने बच्चों को ढंग की शिक्षा नहीं दे पाते। इन स्कूलों में शिक्षकों का शोषण भी चरम पर है। परीक्षाओं में धाँधली, पर्चे लीक होने की बढ़ती घटनाएँ जर्जर और सड़नग्रस्त शिक्षा व्यवस्था के फूट रहे कोढ़ के लक्षण-भर हैं। इन घटनाओं की जाँच करके सुधार की ठोस कार्रवाई करने के बजाय इनके विरुद्ध आवाज़ उठा रहे छात्रों-युवाओं पर ही जगह-जगह लाठियाँ बरसायी जाती हैं।

नियमित शिक्षकों की नियुक्ति करने के बजाय पहले तो बेहद कम वेतन पर 'शिक्षा मित्र' और 'शिक्षा प्रेरक' नियुक्त किये गये और फिर कई-कई वर्ष तक काम करने के बाद एक झटके में एक लाख 'शिक्षा प्रेरकों' को बेरोज़गार कर दिया गया और हज़ारों शिक्षा मित्रों के भर्ती में समायोजन को रद्द कर दिया गया। प्रदेश की सवा तीन लाख आँगनवाड़ी कार्यकर्त्रियाँ और सहायिकाएँ वर्षों से राज्य कर्मचारी के दर्जे और मानदेय की माँग कर रही हैं, लेकिन किसी सरकार से झूठे वायदों और लाठियों के सिवा उन्हें कुछ नहीं मिला है। इतनी बुरी स्थिति के बावजूद प्रदेश में शिक्षा पर व्यय में लगातार कटौती की जाती रही है।

जनता करती हाहाकार - कौन है इसका ज़िम्मेदार?

बेरोज़गारी की हालत की बात उठने पर सत्ता में बैठे लोगों की ओर से अक्सर तर्क दिया जाता है कि सरकार सभी को रोज़गार दे ही नहीं सकती। अक्सर जनसंख्या का तर्क देकर भी कहा जाता है कि सबको नौकरी देना सम्भव नहीं है। ऐसे तर्कों का विस्तृत जवाब तो बाद की बात है, फ़िलहाल इनका झूठ साबित करने के लिए ख़ुद इस सरकार के दिये हुए चन्द आँकड़े ही काफ़ी हैं। पिछले दिनों कार्मिक मामलों के राज्यमन्त्री जितेन्द्र सिंह ने राज्यसभा में माना कि देश में कुल 4,20,547 पद अकेले केन्द्र में ख़ाली पड़े हैं। देशभर में प्राइमरी और अपर-प्राइमरी अध्यापकों के क़रीब 10 लाख पद, पुलिस विभाग में 5,49,025 पद, 47 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के 6 हज़ार पद, 363 राज्य विश्वविद्यालयों में शिक्षकों के 63 हज़ार पद ख़ाली हैं। 36 हज़ार सरकारी अस्पतालों में 2 लाख से ज़्यादा डॉक्टरों के और 11,500 मनोचिकित्सकों के पद ख़ाली पड़े हैं। आये दिन दुर्घटनाएँ झेल रहे रेलवे में क़रीब 2,25000 पद ख़ाली हैं। वित्त मन्त्रालय के अनुसार केन्द्र में कुल 36.34 लाख पद स्वीकृत हैं जिनमें से 32.21 लाख पद ही भरे हुए हैं, यानी केन्द्र सरकार में 11.36 प्रतिशत पद ख़ाली हैं। यही हाल सभी राज्यों के विभिन्न विभागों का है। यानी सरकारों की मंशा ही नहीं है नौकरी देने की।

पिछले तीन दशक से जारी निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के चलते रोज़गार की हालत और भी बिगड़ती गयी है। इन्हीं नीतियों ने स्वास्थ्य, परिवहन, बिजली, पानी जैसे बुनियादी अधिकारों के साथ ही शिक्षा को भी पूरी तरह बाज़ार में ख़रीदे-बेचे जाने वाले माल में तब्दील कर दिया है। कई सर्वेक्षणों के अनुसार, हर साल दो करोड़ रोज़गार देने के वादे के साथ सत्ता में आये मोदी के राज में संगठित-असंगठित क्षेत्र में उल्टे दो करोड़ रोज़गार छिन गये हैं। इसकी बहुत बड़ी मार उत्तर प्रदेश के लोगों पर पड़ी है। और यह मार केवल कम तनख्वाह वाले रोज़गारों पर नहीं पड़ी है। 2014 से 2016 के बीच तकनीकी कॉलेजों में कैम्पस रिक्रूटमेण्ट में 45 प्रतिशत की कमी आयी है। इसका एक बड़ा कारण कुकुरमुत्ते की तरह खुल रहे निजी मेडिकल-डेण्टल, इंजीनियरिंग और मैनेजमेण्ट कॉलेज हैं, जो मोटी फ़ीस वसूलने के बाद भी ऐसी घटिया शिक्षा देते हैं जो किसी काम की नहीं होती।

शिक्षा और रोज़गार - हमारा जन्मसिद्ध अधिकार!

अक्सर लोग ख़ुद ही सोच लेते हैं कि सभी को शिक्षा और रोज़गार दिया ही नहीं जा सकता, कि यह सरकार की ज़िम्मेदारी ही नहीं है। दरअसल लोगों के दिमाग़ में इस तर्क को कूट-कूटकर बैठा दिया गया है, ताकि वे शिक्षा और रोज़गार को अपना अधिकार समझकर इसकी माँग ही न करें। मगर सच्चाई क्या है? किसी भी लोकतान्त्रिक समाज में भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा पाना हर नागरिक का बुनियादी अधिकार होता है। भारत से कम संसाधनों वाले कई देश अपने नागरिकों को मुफ़्त शिक्षा मुहैया कराते हैं। सभी को रोज़गार देने के लिए तीन चीज़ें चाहिए - काम करने योग्य लोग, विकास की सम्भावनाएँ और प्राकृतिक संसाधन। हमारे यहाँ ये तीनों चीज़ें प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। सवाल सरकारों की नीयत का है। "रोज़गार-विहीन विकास" की बात करने वाली पूँजीपरस्त और जनविरोधी नीतियों को लागू करने में कांग्रेस-भाजपा से लेकर हर रंग के झण्डे वाली सारी चुनावी पार्टियों की आम सहमति है। इन लुटेरी नीतियों को सबसे ज़ोर-शोर से लागू करने वाली भाजपा आज देशी-विदेशी पूँजीपतियों की सबसे चहेती पार्टी है। लोग शिक्षा, रोज़गार, महँगाई जैसे असली सवालों पर एकजुट होकर आवाज़ न उठा सकें, इसीलिए भाजपा और संघ परिवार के तमाम संगठन धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के नाम पर तरह-तरह के भावनात्मक मुद्दे उभाड़कर लोगों को आपस में लड़ाने और बाँटने का काम करते हैं।

लेकिन क्या इस हालत को चुपचाप स्वीकार कर लिया जाये? क्या हाथों पर हाथ धरकर बैठे रहा जाये? आज देश-भर में छात्र-युवा जगह-जगह शिक्षा और रोज़गार से जुड़ी माँगों पर सत्ता से टकरा रहे हैं, लेकिन अन्धी-बहरी सरकारें उनकी आवाज़ को अनसुना कर दे रही हैं। ज़रूरत है इन माँगों पर व्यापक तैयारी

(पेज 10 पर जारी)

शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान, उत्तर प्रदेश की प्रमुख माँगें

1. 'हरेक काम करने योग्य नागरिक को स्थायी रोज़गार व सभी को समान और निःशुल्क शिक्षा' के अधिकार को संवैधानिक संशोधन करके मूलभूत अधिकारों में शामिल किया जाये। प्रदेश सरकार इस बाबत विधानसभा में प्रस्ताव पारित करके केन्द्र को भेजे।

2. प्रदेश में जिन पदों पर परीक्षाएँ हो चुकी हैं, उनमें पास होने वाले उम्मीदवारों को तत्काल नियुक्तियाँ दी जायें। रिक्तियों की घोषणा से लेकर नियुक्ति-पत्र देने की समय-सीमा तय करके उसे सख्ती से लागू किया जाये। परीक्षा परिणाम घोषित होने के छह माह में नियुक्ति पत्र देना अनिवार्य किया जाये।

3. प्रदेश में विभिन्न विभागों में ख़ाली पड़े लाखों पदों को भरने की प्रक्रिया जल्द से जल्द शुरू की जाये।

4. नियमित प्रकृति के कामों में ठेका प्रथा पर रोक लगायी जाये, सरकारी विभागों में नियमित काम कर रहे सभी कर्मचारियों को स्थायी किया जाये और ऐसे सभी पदों पर स्थायी भर्ती की जाये।

5. प्रदेश में शहरी और ग्रामीण बेरोज़गारों के पंजीकरण की व्यवस्था की जाये और रोज़गार नहीं मिलने तक कम से कम 10,000 रुपये बेरोज़गारी भत्ता दिया जाये। इसे सुनिश्चित करने के लिए प्रदेश सरकार 'भगतसिंह रोज़गार गारण्टी क़ानून' पारित करे।

6. प्रदेश में सरकारी स्कूलों की खस्ताहाल हालत को ठीक किया जाये। सभी स्कूलों में शिक्षकों के ख़ाली पड़े पद भरे जायें और तय मानकों के अनुसार पढ़ाई की व्यवस्था की जाये। शिक्षा पर व्यय बढ़ाकर जीडीपी का कम से कम 6 प्रतिशत किया जाये।

7. प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा तक शिक्षा के बढ़ते निजीकरण और बाज़ारीकरण पर रोक लगायी जाये। निजी स्कूलों-कॉलेजों, मेडिकल-डेण्टल, इंजीनियरिंग व मैनेजमेण्ट कॉलेजों में फ़ीस, सुविधाएँ और शिक्षकों के वेतन के मानक तय करने के लिए क़ानून बनाया जाये।

8. बेरोज़गार युवकों से हर वर्ष की जाने वाली हज़ारों करोड़ की कमाई बन्द की जाये। नौकरियों के लिए आवेदन के भारी शुल्कों को ख़त्म किया जाये और साक्षात्कार तथा परीक्षा के लिए यात्रा को निःशुल्क किया जाये।

9. प्राइवेट ट्यूशन और कोचिंग सेण्टरों की मनमानी और लूट को रोकने के लिए नियमावाली बनायी जाये।

10. प्रदेश में रोज़गार और ख़ाली पदों की स्थिति पर सरकार श्वेत पत्र जारी करे।

नफ़रत की ख़ूनी चादर से नाकामियों को ढँकने की नाकाम कोशिश

(पेज 1 से आगे)

संघ परिवार अब पूरी नंगई और बेशर्मी के साथ फिर अपने असली खेल, यानी नफ़रत की खेती करने में जुट गये हैं ताकि आने वाले चुनावों में वोटों की फ़सल काटी जा सके। इस खेती को जनता के ख़ून से सींचने में कोई कमी न रह जाये इसलिए जगह-जगह संघी संगठनों के प्रशिक्षण शिविर लगाकर हिन्दू युवकों और बच्चों को मारकाट मचाने की ट्रेनिंग भी दी जा रही है। रोज़गार देने, महँगाई कम करने, अपराध रोकने, भ्रष्टाचार पर रोक लगाने जैसे सारे दावों के हवा हो जाने के बाद उनके पास अब कोई चारा भी नहीं है कि समय से पहले ही अपना नक़ली सदाचारी दुपट्टा उतार फेंकें और सीधे-सीधे हिंसा और घृणा का घिनौना खेल शुरू कर दें। कर्नाटक चुनाव के पहले इसके कई उदाहरण हम देख चुके हैं। मध्यप्रदेश में होने वाले चुनाव के पहले वहाँ फैलायी जा रही नफ़रत की आग एक निर्दोष मुसलमान को निगल चुकी है, जिसे गोकशी की अफ़वाह उड़ाकर मार दिया गया।

वैसे तो 2014 में भाजपा के सत्ता में आने के साथ ही समाज को बाँटने और इतिहास के पहिये को उल्टा घुमाने का चक्कर शुरू हो गया था। लेकिन इन चार सालों में मोदी के मुखौटे के एकदम नंगा हो जाने और सरकार के विरुद्ध चौतरफ़ा असन्तोष बढ़ते जाने के कारण अब ये काम बिल्कुल नंगई से किया जा रहा है। अगर ये अपने इरादे में कामयाब रहे, तो 2019 में लोकसभा चुनाव के पहले इसी मॉडल को चारों तरफ़ लागू करके पूरे देश को ख़ून के दलदल में तब्दील करने की पूरी कोशिश करेंगे। इसलिए सावधान रहने, एकजुट रहने और लोगों के बीच इनके गन्दे इरादों का पर्दाफ़ाश करने की ज़रूरत है।

फासीवाद वास्तव में सड़ता हुआ पूँजीवाद होता है। पूँजीवाद के आर्थिक संकट के गहराने के साथ ही पूरी दुनिया में फासिस्ट ताक़तें सर उठा रही हैं। क्योंकि संकट में फँसे पूँजीवाद के लिए अपने को बचाने का एक ही तरीक़ा होता है, और वह है जनता को और भी कसकर निचोड़कर अपने मुनाफ़े को बनाये रखना। इसके लिए उसे ऐसे आन्दोलन की ज़रूरत होती है जो सत्ता में बैठकर डण्डे के ज़ोर पर मेहनतकशों की हड्डियाँ पूरी ताक़त से निचोड़े और दूसरी तरफ़ समाज में आपसी नफ़रत फैलाकर लोगों को इस क़दर बाँट दे कि वे अपनी तबाही-बर्बादी के बारे में न सोच पायें और न ही इसके विरुद्ध लड़ पायें। भारत में भी यही हो रहा है। मोदी की स्टार्टअप, स्टैण्डअप, मेक इन इण्डिया जैसी तमाम योजनाओं और सैकड़ों करोड़ रुपये उड़ाकर विदेशों के अन्धाधुन्ध दौरों के बावजूद अर्थव्यवस्था बिल्कुल ठप है। रोज़गार पैदा नहीं हो रहा है क्योंकि पहले से लगे हुए कारख़ाने ही पूरी क्षमता पर नहीं चल रहे हैं, नये लगने का सवाल ही नहीं। सरकारी नौकरियों में क़िस्तों में और गुपचुप कटौती तो लगातार जारी थी, अब यह ऐलान हो गया है कि एक झटके में केन्द्र सरकार के साढ़े चार लाख पद ख़त्म कर दिये जायेंगे। मज़दूरी बढ़ नहीं रही, पर महँगाई बेहिसाब बढ़ती जा रही है। मनरेगा से लेकर तमाम कल्याणकारी योजनाओं में कटौती करके पूँजीपतियों को भारी छूटें और तोहफ़े दिये जा रहे हैं; शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान सब आम लोगों की पहुँच से दूर होते जा रहे हैं। मज़दूर, किसान, कर्मचारी, छात्र, नौजवान, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी, महिलाएँ – सब तंगहाल हैं और आवाज़ उठाने पर पीटे जा रहे हैं, दमन के शिकार बनाये जा रहे हैं।

मौजूदा हालात पहले से बहुत बदल गये हैं। आज हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों की ताक़त बहुत अधिक बढ़ चुकी है। इन्होंने बड़े पैमाने पर अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ नफ़रत का वातावरण बना दिया है। गौहत्या, धर्म परिवर्तन, लव जिहाद, हिन्दू धर्म की रक्षा आदि तमाम तरह के झूठे नारे उछालकर अल्पसंख्यकों, ख़ासकर मुसलमानों और ईसाइयों को निशाना बनाया जा रहा है। दलितों पर दमन बहुत बढ़ गया है। साम्प्रदायिक फासीवाद के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वालों साहित्यकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि को जान से मारने की धमकियाँ दी जा रही हैं, कई की हत्याएँ हो चुकी हैं।

लुटेरे पूँजीपति वर्ग की सेवा में हिटलर-मुसोलिनी की तर्ज़ पर भारत में फासीवादी सत्ता क़ायम करके जनता के सारे जनवादी अधिकार छीनने का सपना देखने वाली आरएसएस की सदस्यता पिछले पाँच सालों में तेज़ी से बढ़ी है। अगस्त 2015 की एक रिपोर्ट के मुताबिक़ पिछले पाँच सालों में इसकी देश के कोने-कोने में लगने वाली शाखाओं की संख्या में 61 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। देश में रोज़ाना इसकी 51335 शाखाएँ लगती हैं। आरएसएस से सम्बन्धित क़रीब 40 संगठनों का आधार तेज़ी से बढ़ा है। मोदी सरकार बनने के बाद संघ परिवार के फैलाव में और भी तेज़ी आयी है और सेना, पुलिस, नौकरशाही से लेकर न्यायपालिका और चुनाव आयोग जैसी राज्य तन्त्र की संस्थाओं में, शिक्षण संस्थाओं आदि में इनकी घुसपैठ बहुत बढ़ गयी है।

संघ परिवार की इस बढ़ी ताक़त के साथ ही साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं में भी तेज़ वृद्धि हुई है। संघ परिवार ही नहीं बल्कि इसे सीधे या परोक्ष ढंग से जुड़े अनेक हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थी संगठन साम्प्रदायिक नफ़रत फैला रहे हैं और हिंसा की घटनाओं को अंजाम दे रहे हैं। विभिन्न पार्टियों की सरकारें व पुलिस प्रशासन भी इनके ख़िलाफ़ कार्रवाई करने की बजाय इनका साथ देते हैं। भाजपा की केन्द्र व राज्य सरकारें हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों को हवा दे रही हैं। पिछले चार वर्ष में बर्बर साम्प्रदायिक हिंसा के ज़्यादातर मामले में दोषियों को सज़ा नहीं हुई, उल्टे उन्हें बचाने की कोशिश की गयी। विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रियों, मुख्यमन्त्रियों, सांसदों, विधायकों व अन्य नेताओं द्वारा मुसलमानों के ख़िलाफ़ भड़काऊ बयान लगातार आते रहे, लेकिन उन पर कोई कार्रवाई नहीं हुई। ऐसी घटनाओं पर नरेन्द्र मोदी की चुप्पी और कभी-कभी दिये जाने वाले गोल-मोल बयानों से हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों को स्पष्ट सन्देश जाता है कि वे अपने काले कारनामों में ज़ोर-शोर से लगे रहें, उनके ख़िलाफ़ कार्रवाई करने का सरकार का कोई इरादा नहीं है।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि देश में इस समय जो लोग देशभक्ति और राष्ट्रभक्ति के ठेकेदार बने हुए हैं, ये वही लोग हैं जिन्होंने आज़ादी की लड़ाई में कोई हिस्सा नहीं लिया था! ये वही लोग हैं जिन्होंने अमर शहीद भगतसिंह और उन जैसे तमाम अनेक आज़ादी के मतवालों के ख़िलाफ़ अंग्रेज़ों के लिए मुख़बिरी की थी! सत्ताधारी पार्टी और संघ परिवार के ये लोग आज देश को धर्म और जाति के नाम पर तोड़ रहे हैं और साम्प्रदायिकता की लहर पर सवार होकर सत्ता में पहुँच गये हैं। इन्होंने देशभक्ति को सरकार-भक्ति से जोड़ दिया है। जो भी सरकार से अलग सोचता है, उसकी नीति की आलोचना करता है, हक़ के लिए आवाज़ उठाता है उसे तुरन्त देशद्रोही और राष्ट्रद्रोही घोषित कर दिया जाता है। अम्बानी और अदानी के टुकड़ों पर पलने वाला कारपोरेट मीडिया भी इन तथाकथित देशभक्तों के सुर में सुर मिलाता है और अपने स्टूडियो में ही मुकदमा चलाकर फ़ैसला सुना डालता है!

नक़ली देशभक्ति के इस गुबार में आम मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी के ज़रूरी मुद्दों को ढँक देने की कोशिश की जा रही है। दाल, सब्ज़ी, दवाएँ, शिक्षा, तेल, गैस, किराया-भाड़ा, हर चीज़ की क़ीमतें आसमान छू रही हैं और ग़रीबों तथा निम्न मध्यवर्ग के लोगों का जीना मुहाल हो गया है। 'विकास' के लम्बे-चौड़े दावों में से कोई भी पूरा होना तो दूर की बात है, पिछले चार साल में खाने-पीने, दवा-इलाज और शिक्षा जैसी बुनियादी चीज़ों में बेतहाशा महँगाई, मनरेगा और विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं में भारी कटौती से आम लोग बुरी तरह तंग हैं। दूसरी ओर, अम्बानी, अदानी, बिड़ला, टाटा जैसे अपने आकाओं को मोदी सरकार एक के बाद एक तोहफ़े दे रही है! तमाम करों से छूट, लगभग मुफ़्त बिजली, पानी, ज़मीन, ब्याज़रहित क़र्ज़ और मज़दूरों को मनमाफ़िक ढंग से लूटने की छूट दी जा रही है। देश की प्राकृतिक सम्पदा और जनता के पैसे से खड़े किये सार्वजनिक उद्योगों को औने-पौने दामों पर उन्हें सौंपा जा रहा है। 'स्वदेशी', 'देशभक्ति', 'राष्ट्रवाद' का ढोल बजाते हुए सत्ता में आये मोदी ने अपनी सरकार बनने के साथ ही बीमा, रक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों समेत तमाम क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को इजाज़त दे दी है। 'मेक इन इण्डिया' के सारे शोर-शराबे का अर्थ यही है कि 'आओ दुनिया भर के मालिको, पूँजीपतियो और व्यापारियो! हमारे देश के सस्ते श्रम और प्राकृतिक संसाधनों को बेरोक-टोक जमकर लूटो!'

अगर हम आज ही हिटलर के इन अनुयायियों की असलियत नहीं पहचानते और इनके ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठाते तो कल बहुत देर हो जायेगी। हर ज़ुबान पर ताला लग जायेगा। देश में महँगाई, बेरोज़गारी और ग़रीबी का जो आलम है, ज़ाहिर है हममें से हर उस इंसान को कल अपने हक़ की आवाज़ उठानी पड़ेगी जो मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर पैदा नहीं हुआ है। ऐसे में हर किसी को ये सरकार और उसके संरक्षण में काम करने वाली गुण्डावाहिनियाँ "देशद्रोही" घोषित कर देंगी! हमें इनकी असलियत को जनता के सामने नंगा करना होगा। शहरों की कॉलोनियों, बस्तियों से लेकर कैम्पसों और शैक्षणिक संस्थानों में हमें इन्हें बेनक़ाब करना होगा। गाँव-गाँव, क़स्बे-क़स्बे में इनकी पोल खोलनी होगी।

फासिस्टों के विरुद्ध धुआँधार प्रचार और इस संघर्ष में मेहनतकश जनता के नौजवानों की भर्ती के साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि फासिस्ट शक्तियों ने आज राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा करने के साथ ही, समाज में विभिन्न रूपों में अपनी पैठ बना रखी है। इनसे मुकाबले के लिए हमें वैकल्पिक शिक्षा, प्रचार और संस्कृति का अपना तन्त्र विकसित करना होगा, मज़दूर वर्ग को राजनीतिक स्तर पर शिक्षित-संगठित करना होगा और मध्य वर्ग के रैडिकल तत्वों को उनके साथ खड़ा करना होगा। संगठित क्रान्तिकारी कैडर शक्ति की मदद से हमें भी अपनी खन्दकें खोदकर और बंकर बनाकर पूँजी और श्रम की ताक़तों के बीच मोर्चा बाँधकर चलने वाले लम्बे वर्गयुद्ध में पूँजी के भाड़े के गुण्डे फासिस्टों से मोर्चा लेना होगा।

कर्नाटक चुनाव और इक्कीसवीं सदी के फासीवाद की अश्लील राजनीति के मुज़ाहरे

(पेज 9 से आगे)

बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी, महँगाई, गिरते मुनाफ़े, उद्योग, खेती और व्यापार में छोटी पूँजी की तबाही और विशालकाय घोटालों के बीच होने वाले फासिस्ट उभार के आगे संशोधनवादियों और उनकी रणनीति के पास कोई जवाब नहीं था। इन घोटालों ने बस यही साबित किया था कि शासक वर्गों के विभिन्न धड़ों के बीच की एकता कमज़ोर हो चुकी है और संगठित वर्ग हित के बजाय अलग-अलग हिस्सों के हित हावी हो रहे हैं। आम तौर पर, हर फासिस्ट उीार के पहले ऐसा होता है। ऐसी स्थितियाँ फासिस्टों के उभार को गति देती हैं। आर्थिक संकट सामाजिक संकट और शासक वर्ग तथा पूँजीवादी राज्य के राजनीतिक संकट के रूप में सामने आता है और बड़ी एकाधिकारी पूँजी अपने हितों की रक्षा के लिए फासिस्ट पार्टी के पीछे खड़ी हो जाती है। 1914 के चुनाव में भी यही हुआ था। आज एक आम आदमी भी जानता है कि कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाये, तो बुर्जुआ चुनावों में हार-जीत का फ़ैसला अन्ततः पूँजी की ताक़त से होता है। इसी तरह से मोदी और हिन्दुत्व फासिस्ट सत्ता में आये थे और इसी तरह से वे अपनी राजनीतिक बढ़त बनाये हुए हैं। इस पूरी प्रक्रिया में संसदीय वाम की भूमिका को साफ़ देखा जा सकता है। इसीलिए, फासीवाद के प्रतिरोध की एक कारगर रणनीति के लिए मज़दूर आन्दोलन में अर्थवाद, ट्रेड यूनियनवाद और सुधारवाद के भण्डाफोड़ का कार्यक्रम भी आवश्यक है क्योंकि ये विजातीय प्रवृत्तियाँ मज़दूर वर्ग को निहत्था करके उसे मेहनतकश अवाम का अगुवा बनने से रोक देती हैं और फासीवाद को यह मौक़ा देती हैं कि असंतुष्ट निम्न-मध्य वर्ग को अपने पाले में खींच लाये और उसे मज़दूर आन्दोलन के विरोध में खड़ा कर दे।

आज हमें स्पष्ट चुनाव करने होंगे: या तो हम मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था से आगे जाने की तैयारी करें या फिर यह परजीवी, सड़ता हुआ, संकटों से घिरा पूँजीवाद फासीवाद या धुर दक्षिणपंथी प्रतिक्रिया के दूसरे रूपों को पैदा करता ही रहेगा। कोई तीसरा रास्ता नहीं है। 2019 में होने वाले अगले चुनाव में ऊँट किसी भी करवट बैठ सकता है। लेकिन यह सोचना राजनीतिक बचकानापन होगा कि अगर भाजपा हार गयी तो फासीवाद का ख़तरा टल जायेगा। ऐसे ही उन्मत्त जश्न 2004 और 2009 में भाजपा की हार पर भी मनाये गये थे, जब कुछ वाम टिप्पणीकार दलील दे रहे थे कि यह भाजपा की अन्तिम हार है और इससे यह उबर नहीं सकेगी। 2014 के चुनाव से उन्हें गहरा सदमा लगा। कारण यही है कि पूँजीवाद के भीतर, इस सड़ते हुए, मरते हुए पूँजीवाद के भीतर एकमात्र विकल्प धुर दक्षिणपंथी प्रतिक्रिया ही है, जो अक्सर फासीवाद के रूप में सामने आयेगी। इसलिए, अगर या तो हमें पूँजीवाद से आगे जाने के लिए तैयारी करनी होगी या फिर फासीवाद का दण्ड भुगतने के लिए तैयार हो जाना होगा।

(अंग्रेज़ी पत्रिका 'द एन्विल' से साभार, अनुवाद: मज़दूर बिगुल)

कर्नाटक चुनाव और इक्कीसवीं सदी के फासीवाद की अश्लील राजनीति के मुज़ाहरे

इस समय हम भारत की पूँजीवादी राजनीति में जो कुछ देख रहे हैं वह इक्कीसवीं सदी में फासीवाद के हमारे विश्लेषण को सही साबित कर रहा है। फासीवाद के नये अवतार को बुर्जुआ संसदीय जनतन्त्र के खोल को उतार फेंकने की कोई ज़रूरत नहीं है। ख़ासकर एशिया, अफ़्रीका और लातिन अमेरिका के सापेक्षिक रूप से पिछड़े, उत्तर-औपनिवेशिक देशों में बुर्जुआ संसदीय व्यवस्था इस क़दर सड़ी हुई और निरर्थक हो चुकी है कि यह जनता का प्रतिनिधित्व करने का अपना बचा-खुचा दावा भी खो चुकी है, हालाँकि मेहनतकश वर्गों का तो यह वास्तव में कभी भी प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। बुर्जुआ संसदीय व्यवस्था के भीतर, विपक्ष अपनी विश्वसनीयता पूरी तरह खो चुका है, जो साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के दौर में पूँजीपति वर्ग के चरित्र को ही बताता है। यह अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध या उन्नीसवीं सदी के मध्य के यूरोपीय बुर्जुआ वर्ग जैसा नहीं है, जिसका एक प्रगतिशील धड़ा भी था और जो पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर कुछ प्रगतिशील सुधारों के लिए भी आवाज़ उठाता था। आज पूँजीवाद अपनी समस्त प्रगतिशील सम्भावनाएँ खो चुका है और बुर्जुआ वर्ग के किसी धड़े की प्रगतिशील सम्भावनाएँ भी समाप्त हो चुकी हैं। जर्मनी और इटली में फासिस्ट उभार के पहले दौर के समय भी वहाँ बुर्जुआ वर्ग का एक हिस्सा था, छोटा ही सही, जिसने इस उभार का विरोध किया था, हालाँकि वह नपुंसक किस्म का विरोध था। लेकिन अब हालात बदल चुके हैं। इसीलिए, इक्कीसवीं सदी में, साम्राज्यवाद के युग के अंतिम चरण, यानी भूमण्डलीकरण के दौर में, फासीवाद को बुर्जुआ जनतन्त्र के खोल को उतार फेंकने की ज़रूरत नहीं रह गयी है। इसका कारण यह है कि बुर्जुआ जनतन्त्र की तमाम संस्थाएँ – संसद, न्यायपालिका, चुनाव आयोग आदि निरर्थक हो चुकी हैं और महज़ फासिस्टों के हाथों के प्यादे बन चुकी हैं। क्या यह भारत में वर्तमान बुर्जुआ राजनीति के वर्तमान परिदृश्य की सच्चाई नहीं है? क्या भारत के चुनाव आयोग की स्वायत्ता नष्ट नहीं की जा चुकी है? क्या न्यायपालिका की प्रसिद्ध और बहुचर्चित निष्पक्षता की नींव दरक नहीं चुकी है? बस इनके आवरण बचे रह गये हैं।

सबसे पहले, भारतीय न्यायपालिका के हाल के व्यवहार का विश्लेषण किया जाना चाहिए क्योंकि यह बुर्जुआ जनवाद की सबसे वर्चस्वशाली संस्थाओं में से एक है और इसके इर्द-गिर्द एक आभामण्डल बना रहा है। आम लोग, ख़ासकर मध्यवर्ग इससे अभिभूत रहा है। न्यायपालिका जो कुछ भी कहती है उसे बहुत मान दिया जाता है और काफ़ी लोगों में यह चीज़ों को ज्यों का त्यों मान लेने की भावना जगाता है। लेकिन न्यायपालिका के हाल के फ़ैसलों, वक्तव्यों और आम तौर पर उसके व्यवहार ने इस छवि को काफ़ी कमज़ोर किया है। भाजपा अध्यक्ष अमित शाह के विरुद्ध एक आदेश देने वाले जज लोया की कथित हत्या का मामला हो, भारत के प्रधान न्यायाधीश के स्वेच्छाचारी और तानाशाहाना व्यवहार का मसला हो, जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायलय के चार अन्य जजों ने खुला विरोध ज़ाहिर किया था, या फिर प्रधान जज के विरुद्ध भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के मामले में याचिका की सुनवाई करने वाली बेंच की अध्यक्षता खुद प्रधान जज द्वारा करने से लेकर प्रधान जज के विरुद्ध महाभियोग को खारिज करना हो; इन सभी घटनाओं ने बिला शक़ यह दिखा दिया है कि न्यायपालिका की स्वतन्त्रता अब अतीत की बात हो चुकी है। फासिस्टों के सत्ता में आने पर ऐसी स्वतन्त्रता कुन्दन शाह की 'जाने भी दो यारो' या कोस्ता गावरास की 'ज़ेड' जैसी फ़िल्मों का मसाला बन कर रह जाती है। यह स्थिति फ़ासीवाद द्वारा खुद को बदलने की कार्रवाई के हमारे विश्लेषण की भी पुष्टि करती है। जैसाकि हमने पत्रिका के पहले अंक में फासीवाद पर अपने आलेख में कहा था, प्रलयंकारी उभार और प्रलयंकारी गिरावट इक्कीसवीं सदी के फासीवाद की अभिलाक्षणिकताएँ नहीं हैं, बल्कि एक लम्बी गर्भाधान अवधि और बार-बार होने वाली अचानक उग्र ढंग से फूट पड़ने वाली कार्रवाई इसकी विशेषताएँ हैं। इसकी वजह से भारत में फासिस्टों को सेना, पुलिस, नौकरशाही और न्यायपालिका सहित राज्य के तन्त्र में घुसपैठ करने और इसके अणुओं तक में घुस जाने में कामयाब रहे हैं। भारत में फासीवाद का वर्तमान उग्र उभार यह दिखाता है कि हिन्दुत्व फासीवादियों ने कितने प्रभावी ढंग से बुर्जुआ राज्य और बुर्जुआ जनतन्त्र की तमाम संस्थाओं में घुसपैठ कर ली है। यह महज़ अमित शाह जैसे लोगों की धूर्तता के कारण नहीं है, जिसकी तुलना ब्रेष्ट के उपन्यास 'तीन टके का उपन्यास' से करना बिल्कुल सही होगा। कई राजनीतिक टिप्पणीकार भाजपा की सफलता का श्रेय अमित शाह के 'मास्टर-माइंड' को देते हैं; लेकिन वास्तव में आरएसएस द्वारा राज्य के तन्त्र में लम्बे समय के दौरान की गयी घुसपैठ और ''संघ परिवार'' के संगठनों के ज़मीनी काम के ज़रिए बड़े धीरज के साथ एक साम्प्रदायिक आम सहमति बनाने और समाज के अणुओं तक में घुस जाने की कार्रवाइयों ने अमित शाह जैसे व्यक्ति को इतना सक्षम बना दिया है कि वह बुर्जुआ जनतन्त्र की संस्थाओं का खुला माख़ौल बना रहा है।

भारत के संसदीय बुर्जुआ जनतन्त्र की एक और बदनाम हो चुकी संस्था है निर्वाचन आयोग। अब यह कोई रहस्य नहीं रह गया है कि भाजपा ने व्यवस्थित ढंग से इस संस्था को कमज़ोर किया है। इसमें नीचे से ऊपर तक संघ के लोग भर गये हैं और चुनाव प्रक्रिया की देखरेख करने वाले एक निष्पक्ष निकाय के बजाय, इसे फासिस्टों के हाथ में एक औज़ार में बदल दिया गया है। जिस तरह से चुनाव आयोग ने भाजपा को फ़ायदा पहुँचाने के लिए गुजरात विधानसभा के चुनाव की तिथियाँ घोषित करने में लगातार देर की उसे सब जानते हैं।

इस पूरे प्रकरण में राष्ट्रपति और राज्यपाल जैसे संवैधानिक पदों की बहुचर्चित ''गरिमा'' भी मज़ाक बन चुकी है। ख़ासकर गोआ, मणिपुर और अभी कर्नाटक के चुनावों के बाद। राष्ट्रपति के तो हावभाव से भी यह सच्चाई ज़ाहिर हो जाती है, जब भी वह मोदी, शाह या योगी जैसों के आसपास होते हैं।

वास्तव में कर्नाटक के चुनाव से न सिर्फ़ आज के दौर में फासीवाद के उभार की सच्चाई सामने आयी है, बल्कि यह भी ज़ाहिर हो गया है कि आम तौर पर बुर्जुआ चुनावों में क्या होता है। कई रिपोर्टों में बताया गया है कि भाजपा ने वोट ख़रीदने के लिए किस क़दर बेशुमार पैसे बहाये; भाजपा के 40 प्रतिशत उम्मीदवार आपराधिक रिकॉर्ड वाले थे जबकि कांग्रेस के 30 प्रतिशत। जिस तरह से येदियुरप्पा को भाजपा ने मुख्यमंत्री का उम्मीदवार चुना और रेड्डी बंधुओं को टिकट दिये गये उससे हिन्दुत्ववादी फासिस्टों का 'चाल-चेहरा-चरित्र' बिल्कुल उजागर हो गया। और जब ये सब करने के बावजूद वे साधारण बहुमत तक भी नहीं पहुँच सके, तो भगवा राजनीति के वफ़ादार सेवक राज्यपाल वजुभाई वाला हाज़िर थे। वाला ने भाजपा को अकेली सबसे बड़ी पार्टी के नाते सरकार बनाने का न्यौता दे दिया और बहुमत साबित करने के लिए 15 दिन का समय दे दिया। हालाँकि भाजपा की सरकार बनाने के लिए गोआ और मणिपुर में राज्यपाल ठीक इसका उल्टा कर चुके थे और बिहार में भी अब ऐसा करने से इंकार रहे हैं! वाला के इस क़दम के विरोध में कांग्रेस द्वारा सुप्रीम कोर्ट जाने पर, सुप्रीम कोर्ट ने थोड़ी लाज बचाये रखने के लिए येदियुरप्पा सरकार को 24 घंटे में बहुमत साबित करने को कहा। भाजपा फिर भी आश्वस्त थी कि उसके पास अमित शाह के रूप में मैकहीथ का असली अवतार मौजूद है। एक टीवी शो में भाजपा नेता राम माधव से पूछा गया कि वे बहुमत कैसे जुटायेंगे तो उसने बेशर्मी से जवाब दिया कि हमारे पास अमित शाह है। शाह की ख़रीद-फ़रोख़्त से अपने विधायकों को बचाने के लिए कांग्रेस और जनता दल (एस) अपने विधायकों को बसों में भरकर हैदराबाद के एक रिज़ॉर्ट में ले गये। यह अपने आप में भारत में दूसरे बुर्जुआ दलों के चरित्र को दिखाता है। हालत ये है कि 'सिद्धान्त', 'आदर्श' या 'किसी राजनीति के प्रति प्रतिबद्धता' आदि की बात करने भर से ठहाके लगने लगेंगे। कर्नाटक का पूरा चुनाव और उसके बाद की घटनाएँ दिखाती हैं कि भारत की बुर्जुआ राजनीति अश्लील और हास्यास्पद फूहड़ता की किन गहराइयों में डूब चुकी है।

ये पूरा घटनाक्रम इक्कीसवीं सदी में फासीवादी उभार की चारित्रिक विशेषता है। उन्हें कोई असाधारण क़ानून बनाने और संसदीय जनतन्त्र के खोल को ही उठाकर फेंक देने की कोई ज़रूरत नहीं है। वे नाज़ियों की तमाम हरकतों को (नये ढंग से) इस खोल को छोड़े बिना ही कर सकते हैं। ऊपरी आवरण बना हुआ है लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु बदल गयी है। भारत में हिन्दुत्व फासीवाद ऐसा ही रहा है, और यूरोप के कुछ देशों में फासीवाद की अन्य धाराएँ भी इसी तरह से एक लम्बी प्रक्रिया में ''नीचे से तूफ़ान'' लाने में जुटी हुई हैं जिससे उन्हें समाज के पोर-पोर में जगह बनाने, राज्य तन्त्र में गहरी घुसपैठ करने और इस तरह बुर्जुआ संसदीय जनतन्त्र के ढाँचे को छोड़े बिना फासीवादी उभार लाने का मौका मिल रहा है।

इक्कीसवीं सदी के फासीवाद की यह विशेषता उस रूप से जुड़ी है जिसे रूप में 1970 के दशक से जारी आर्थिक संकट प्रकट हो रहा है। अचानक और प्रलयंकारी ढंग से फूट पड़ने वाली घटना के बजाय संकट ने एक दीर्घकालिक और स्थायी दिखने वाला रूप ले लिया है। इसने निम्न-मध्य वर्ग के तमाम तबकों में एक बहुत गहरी, लम्बी और ढाँचागत प्रतिक्रिया को जन्म दिया है जिनका 'रूमानी उभार' या 'रहस्यवादी उथल-पुथल' ही फासीवाद है। अभूतपूर्व एकाधिकारीकरण, वित्तीयकरण और विश्व स्तर पर सट्टेबाज़ वित्तीय पूँजी के बढ़ते वर्चस्व ने पहले से कहीं अधिक प्रतिक्रियावादी एकाधिकारी वित्तीय पूँजीपति वर्ग को जन्म दिया है जो अपनी बर्बर तानाशाही को सुरक्षित रखने के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार है। एक राजनीतिक आन्दोलन के रूप में फासीवाद बड़ी एकाधिकारी पूँजी के हितों और खतरे में पड़े या ऊपर उठ रहे मध्य वर्ग की अन्धी प्रतिक्रिया को आपस में जोड़ देता है। भारत में हिन्दुत्व फासीवादियों ने भी ऐसा ही किया है। फासिस्ट उभार की पूरी प्रक्रिया और इसके रूप बीसवीं सदी की शुरुआत की तुलना में बहुत बदल चुके हैं। हालाँकि इस धुर प्रतिक्रियावादी, मज़दूर वर्ग विरोधी और जन-विरोधी राजनीतिक व सामाजिक आन्दोलन की वर्गीय सारवस्तु अब भी वही है। लेकिन, चूँकि फासिस्टों के काम करने के तरीके बदल चुके हैं, इसलिए उनके प्रतिरोध और उन्हें पीछे धकेलने की रणनीतियों में भी बदलाव लाना होगा।

भाकपा, माकपा और भाकपा-माले (लिबरेशन) जैसी सामाजिक-जनवादी और संशोधनवादी पार्टियों ने फासीवाद के उभार के साथ ही अपना असली रंग दिखा दिया है। एक पार्टी के रूप में भाकपा तेज़ी से अप्रासंगिक होती जा रही है और उसका ढाँचा यूरोप की सामाजिक-जनवादी पार्टियों से भी ज़्यादा ढीला-पोला होता जा रहा है। अगल-अलग इलाक़ों में भाकपा में आपको कुछ भी और कोई भी मिल सकता है। यह अलग-अलग तरह के सहिष्णु सामाजिक-जनवादियों, भलेमानस सुधारवादियों के साथ ही तरह-तरह के अवसरवादियों के भानमती के कुनबे जैसी हो गयी है। दूसरी ओर, दो-तीन राज्यों में सरकार चलाने के अनुभव वाली माकपा इनसे कहीं अधिक अनुशासित पार्टी है, लेकिन इस समय देशभर में बुरी तरह पराजय का सामना कर रही है, बस केरल में उसका आख़िरी गढ़ बचाहुआ है। बंगाल में हाल में हुए पंचायत चुनाव में वहाँ साढ़े तीन दशक तक राज करने वाली माकपा तीसरे स्थान पर खिसक गयी, जबकि तृणमूल कांग्रेस पहले और भाजपा दूसरे स्थान पर रहीं। केरल में भी लगता है कि देर-सबेर इनका गढ़ टूटेगा। इनमें सबसे अधिक अवसरवादी, भाकपा-माले (लिबरेशन) ''लोकतन्त्र बचाओ, संविधान बचाओ'' जैसे अभियान चलाने में लगी हुई है। ज़रा सोचिये, भारत को अब भी ''अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध औपनिवेशिक'' मानने वाली कोई पार्टी लोकतन्त्र बचाओ का नारा क्यों देगी जबकि वह नहीं मानती कि भारत बुर्जुआ जनवाद वाला एक राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र देश है? दूसरे, कोई कम्युनिस्ट ''संविधान बचाने'' की गुहार क्यों लगायेगा? उल्लेखनीय है कि संविधान बनाने की पूरी प्रक्रिया अलोकतांत्रिक थी और जनता को जो भी जनवादी और नागरिक अधिकार मिले हुए हैं, उन्हें भी स्थगित करने के प्रावधान, पद्धतियाँ और साधन हमारे संविधान में ही मौजूद हैं। कारण यह है कि यह संशोधनवादी पार्टी घनघोर अवसरवादी लोकरंजकतावाद की लाइलाज बीमारी से ग्रस्त हो चुकी है। इस पार्टी द्वारा प्रस्तुत विचारधारात्मक अवस्थितियाँ इसके घृणित अवसरवाद को दर्शाती हैं।

संक्षेप में, पूरा संसदीय वाम को फासीवादी उभार के सामने इस समय लकवा मार गया है। दूसरे, फासीवाद के उभार के लिए वे भी कुछ हद तक ज़िम्मेदार हैं, ठीक वैसे ही जैसे यूरोप की सामाजिक-जनवादी और सोशलिस्ट पार्टियों ने मज़दूर आन्दोलन को अर्थवाद, ट्रेड यूनियनवाद, सुधारवाद के दायरे में जकड़कर फासीवाद के उभार में मदद पहुँचायी थी। समाज के क्रान्तिकारी रूपान्तरण के बिना, मज़दूर वर्ग के पास जो भी क़ानूनी या आर्थिक अधिकार हैं उन्हीं से चिपके रहकर 'पूँजीवाद की सीमाओं के भीतर ही लोकतन्त्र के समाजीकरण' का युटोपिया संशोधनवादियों और सामाजिक-जनवादियों की ख़ास निशानी है। यह रणनीति, जो ठीकठाक आर्थिक सेहत के दौर में काम करती हुई दिख रही थी, संकट आने के साथ बुरी तरह नाकाम हो गयी। 2007-08 के संकट के समय से यही हो रहा है।

(पेज 8 पर जारी)

आँधी-तूफ़ान से हुई जानमाल की भयंकर क्षति

प्रकृति को ज़िम्मेदार ठहराकर यह व्यवस्था अपने निकम्मेपन को नहीं छुपा सकती

वैसे तो हर साल मई के महीने में देश के विभिन्न इलाक़ों में धूल भरी आँधी, तूफ़ान, बिजली गिरने और ओलावृष्टि जैसी प्राकृतिक परिघटनाएँ देखने को आती हैं, लेकिन इस बार उनकी तीव्रता और भयावहता कुछ ज़्यादा ही थी। 2 मई को आयी आँधी में उत्तर प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखण्ड, तेलंगाना में एक दिन में ही 134 लोगों की मौत हो गयी और 400 से ज़्यादा लोग घायल हो गये। 80 से ज़्यादा मौतें तो अकेले उत्तर प्रदेश में हुईं। उसके बाद 13 मई को आयी आँधी में एक बार फिर तबाही का मंजर देखने को आया, जब पूरे देश में 60 लोग मारे गये। अख़बारों और मीडिया चैनलों पर इसकी कवरेज बहुत निराशाजनक रही। ज़्यादातर मीडिया समूहों ने बहुत कम कवरेज की और जहाँ कवरेज हुई भी उसमें इन आपदाओं के लिए क़ुदरत को ही ज़िम्मेदार ठहराया गया। ऊपरी तौर पर देखने पर ये आपदाएँ वाक़ई क़ुदरत का क़हर लगती हैं जिन पर इंसान का कोई वश नहीं है। लेकिन जब हम उनकी तफ़सीलों में जाते हैं, तो पाते हैं कि ये प्राकृतिक परिघटनाएँ ऐसी कुछ ख़ास परिस्थितियों में ही विनाशकारी साबित होती हैं, जिन पर निश्चय ही मनुष्य का नियन्त्रण है।

पर्यावरणविद ज़ोर देकर कहते हैं कि आँधी, तूफ़ान, सूखा, बाढ़ जैसी प्राकृतिक परिघटनाओं की तीव्रता और भयावहता में वृद्धि सीधे तौर पर जलवायु परिवर्तन से जुड़ी हुई है। जलवायु परिवर्तन के लिए मुनाफ़े पर आधारित मौजूदा पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली ज़िम्मेदार है जिसके तहत हुए अनियोजित औद्योगिक विकास और जंगलों को अन्धाधुँध काटने की वजह से पारिस्थितिक असन्तुलन बढ़ता जा रहा है जिसकी परिणति प्राकृतिक आपदाओं की भयावहता और बारम्बारता के बढ़ने के रूप में होती है। मुनाफ़े की हवस में बड़े पैमाने पर जंगल के काटने और पूँजीवाद खेती-बाड़ी की वजह से मृदा क्षरण बहुत तेज़ी से होता है जो आँधी-तूफ़ान की भयावहता को कई गुना बढ़ा देता है, क्योंकि मृदा क्षरण की वजह से मिट्टी धरती से चिपके रहने की बजाय धूल बनकर उड़ जाती है। इसके अतिरिक्त शहरों में कूड़े-करकट का अम्बार खुले में फैला रहता है जिसकी वजह से आँधी के साथ-साथ धूल और ज़हरीले कण फ़िज़ाओं में फैल जाते हैं।

आँधी-तूफ़ान अपने आप में जानलेवा नहीं होते। आँधी-तूफ़ान में जान गँवाने वाले ज़्यादातर लोग किसी इमारत, घर या दीवार के ढहने से या फिर पेड़ के गिरने से मरते हैं। इस बार की आँधी में भी ज़्यादा मौतें उन लोगों की हुईं जिनके घर कच्चे थे। कुछ लोग बिजली के टूटे तार के करेण्ट से भी मरते हैं। बिजली गिरने से मरने वाले लोग भी ज़्यादातर इसलिए मरते हैं क्योंकि वे उस समय पानी भरे खेतों में काम कर रहे होते हैं। प्राकृतिक परिघटनाओं पर भले ही मनुष्य का नियन्त्रण न हो परन्तु उन परिस्थितियों पर निश्चय ही मनुष्य का नियन्त्रण है जो इन मौतों का प्रत्यक्ष कारण होती हैं। आज सिविल इंजीनियरिंग इतनी उन्नत हो चुकी है कि आँधी-तूफ़ान-बिजली गिरने या भूकम्प आदि जैसे ख़तरों से दीवारों, घरों और इमारतों को सुरक्षा को ध्यान में रखकर बनाया जाये तो निश्चीय ही ऐसी मौतों की सम्भावना को काफ़ी हद तक कम किया जा सकता है। इसी तरह से अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद मौसम विज्ञान इतनी तरक़्क़ी तो कर ही चुका है कि आँधी-तूफ़ान-तेज़ बारिश का मोटा-मोटी पूर्वानुमान लगाया जा सके। संचार व्यवस्था भी इतनी उन्नत हो चुकी है कि ऐसे पूर्वानुमानों पर आधारित सूचनाएँ समाज के प्रत्येक सदस्य तक पहुँचाई जा सकती हैं, ताकि कोई भी ऐसे समय बाहर न निकले, जब कोई आपदा आने वाली हो।

लेकिन सोचने वाली बात है कि विज्ञान-प्रौद्योगिकी में इतनी उन्नति के बावजूद आज भी इतने सारे लोग आपदाओं की चपेट में क्यों आ जाते हैं? इस बार मौसम विभाग ने उत्तर भारत में भयंकर आँधी-तूफ़ान आने का अन्देशा जताया था। लेकिन फिर भी तमाम सरकारों ने जानमाल को होने वाले नुक़सान को रोकने के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाये। उत्तर प्रदेश, जहाँ सबसे ज़्यादा मौतें हुईं, के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ तो आपदा प्रबन्धन की निगरानी करने की बजाय कर्नाटक के चुनाव प्रचार में मशगूल थे। वैसे भी हमारे देश में आपदा प्रबन्धन इतना लचर है कि यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वह अपने आप में एक आपदा है। अगर मौसम विभाग के पूर्वानुमानों के आधार पर लोगों को पहले से ही सतर्क करने के इन्तज़ाम किये जायें और आपदा आने के पहले से ही आपदा प्रबन्धन की मशीनरी सतर्क रहे तो आपदा से होने वाले नुक़सान को विचारणीय स्तर पर कम किया जा सकता है।

ऊपर हमने देखा कि आपदा प्रबन्धन अगर बेहतर ढंग से किया जाये तो आपदाओं से होने वाले जानमाल को कम किया जा सकता है। लेकिन अगर आपदा प्रबन्धन के अलावा भी मौजूदा व्यवस्था के ढाँचे में ऐसे तमाम कारक हैं जिनकी वजह से आपदाओं के दौरान आम ग़रीब आबादी की ज़िन्दगी पर ख़तरा बरकरार रहेगा। इसकी वजह समाज का ऐसा असमानतापूर्ण ढाँचा है जिसके तहत उत्पादन के साधनों और तमाम प्राकृतिक संसाधनों का स्वामित्व समाज के मुट्ठी-भर लोगों के पास केन्द्रित है। ऐसे ढाँचे में विज्ञान-प्रौद्योगिकी की चमत्कारिक प्रगति के लाभ का बँटवारा भी असमानतपूर्ण होता है। यह महज़ इत्तेफ़ाक़ नहीं है कि आँधी-तूफ़ान-बिजली आदि का क़हर सबसे ज़्यादा समाज के ग़रीब और मेहनतकश तबक़े पर बपरता है। ग़रीबों-मेहनकशों के घर ऐसी आपदाओं को झेल पाने में समर्थ नहीं होते हैं और उन तक ऐसी आपदाओं की सूचना भी सही समय से पहुँच नहीं पाती। ऐसे अन्यायपूर्ण सामाजिक-आर्थिक ढाँचे के बरकरार रहने से ही सामान्य से सामान्य प्राकृतिक परिघटनाएँ भी एक आपदा का रूप ले लेती हैं। मुनाफ़ा कमाने के लिए कारख़ानों के अन्दर तो ख़ूब योजनाएँ बनायी जाती हैं, परन्तु पूरे समाज के स्तर पर घोर अराजकता छाई रहती है। भ्रष्ट और निठल्ला प्रशासन तन्त्र आग में घी डालने का काम करता है। इन सभी का संयुक्त प्रभाव आपदा की भयावहता को कई गुना बढ़ा देता है। ऐसी आपदाओं के प्रभाव को विचारणीय स्तर तक कम करने के लिए समूचे समाज के स्तर पर योजनाबद्ध विकास की दरकार है। परन्तु उसके लिए मौजूदा सामाजिक-आर्थिक ढाँचे को आमूलचूल ढंग से बदलना होगा।

– आनन्द सिंह

शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान, उत्तर प्रदेश

(पेज 7 से आगे)

और एकजुटता के साथ जुझारू संघर्ष छेड़ने की। इसी मक़सद से उत्तर प्रदेश के पैमाने पर 'शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान' शुरू किया गया है और तमाम छात्रों-युवाओं और जागरूक नागरिकों से इस अभियान से जुड़ने का आह्वान किया जा रहा है।

इसके तहत पूरे प्रदेश में हस्ताक्षर अभियान चलाकर लाखों हस्ताक्षर एकत्र किये जा रहे हैं। राज्य के 9 ज़िलों - लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, गोरखपुर, गाज़ियाबाद, मऊ, अम्बेकडकरनगर, जालौन और चित्रकूट में शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान शुरू किया जा चुका है और अन्य ज़िलों में भी इसे विस्तारित किया जा रहा है। मोहल्ले-मोहल्ले, बस्ती-बस्ती और गाँव-गाँव में नौजवानों (और नागरिकों की टोलियाँ नुक्कड़ सभाओं, पर्चों, मोहल्ला मीटिंगों आदि के माध्यम से प्रचार कर रही हैं। जुलाई से सभी शिक्षण संस्थानों में इस अभियान को लेकर टोलियाँ जायेंगी। **अगले 28 सितम्बर (2018) को, शहीदेआज़म भगतसिंह के 111वें जन्मदिवस के अवसर पर राजधानी लखनऊ में हज़ारों नौजवान और आम नागरिक इन हस्ताक्षरों से युक्त माँगपत्रक के साथ विशाल प्रदर्शन के लिए इकट्ठा होंगे।**

हरियाणा में धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों की उड़ रही धज्जियाँ

कहने को भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है यानी सरकार को किसी भी धर्म विशेष में दख़ल नहीं देनी चाहिए। धर्मनिरपेक्षता का मतलब ही यह होता है कि यह व्यक्ति का निजी मसला है और राजनीति धर्म से अलग रहे। लेकिन हमारे यहाँ तो सभी चुनावी पार्टियाँ जाति-धर्म, मन्दिर-मस्जिद के नाम पर ही लोगों से वोट लेती हैं और शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार और पीने के साफ़ पानी की समस्या जैसे मुद्दों को असल मुद्दे ही नहीं समझा जाता। 70 साल की आज़ादी के बाद भी जिस देश (तमाम प्राकृतिक साधन-सम्पन्न) में क़रीब 30 करोड़ नौजवान बेरोज़गार हों और वहाँ रोज़गार कोई मुद्दा ही ना हो और मीडिया दिन-रात हिन्दू-मुस्लिम की फ़ालतू बहस में टाइम पास करता रहे, आये दिन किसान आत्महत्या करते हों, आधी से ज़्यादा महिलाओं में ख़ून की कमी हो तो इस देश के नौजवानों को तय करना है कि वे कैसा समाज चाहते हैं!

20 अप्रैल को गुड़गाँव के सेक्टर-53 में जुम्मे की नमाज़ पढ़ रहे मुस्लिमों को वहाँ से 6 लफंगों ने हटा दिया। वे जय श्रीराम के नारे लगा रहे थे और मस्जिद में ही नमाज़ पढ़ने को कह रहे थे और ये सब वो हँसते-हँसते कर रहे थे, उनके हाव-भाव से लग रहा थे कि हंगामा (धक्काशाही) करने वाले हिन्दुत्वादी गुण्डों के पीछे खट्टर-मोदी सरकार खड़ी है और जनता को धर्म के नाम पर बाँटने के हथकण्डे लगातार जारी हैं। ताकि लोग असल मुद्दों को छोड़कर जाति-धर्म के नाम पर कट मरे। वैसे तो इस देश में धर्म के नाम पर आये दिन बड़े-बड़े बाबा शहर के किसी भी पार्क या मैदान में तम्बू गाड़के लाउडस्पीकरों से आमजन की रातों की नींद हराम करते हैं और तमाम मन्दिरों–मस्जिदों-गुरुद्वारों में सुबह-सुबह भयंकर शोर मचाया जाता है, लेकिन उन पर कोई किसी तरह की बन्दिश नहीं, क़ानून भी है कि कोई ध्वनि-प्रदूषण नहीं करेगा, परन्तु ये क़ानून कहने-भर को है, आये दिन जगराता वाले पूरी गली घेरके सारी रात लोगों की नींद हराम करते हैं। रामपाल, गुरमीत रामरहीम, आशाराम, नारायण सांई आदि बलात्कारी-हत्यारे बाबाओं के पीछे बीजेपी के अटल बिहारी से लेकर आडवानी, खट्टर, नरेन्द्र मोदी तक जैसे बड़े-बड़े नेता होते हैं और अपने वोट बैंक को पक्का करने में अहर्निश लगे रहते हैं।

असल में हमारे देश की जनता अपने तमाम हक़-अधिकारों से कोसों दूर है। मेहनतकश जनता के बच्चे सरकारी अस्पतालों में बिना मूलभूत सुविधाओं के दम तोड़ देते हैं और दूसरी तरफ़ प्राइवेट अस्पताल छोटी-मोटी बीमारी में भी लाखों लूट लेते हैं, सरकारी स्कूलों में देश के स्तर पर लाखों पद ख़ाली पड़े हैं, देश में कोई ऐसा सरकारी कॉलेज नहीं जहाँ सभी टीचर पक्के हों। ट्रेन और सरकारी बसों में सफ़र करो तो भेड़-बकरियों की तरह लोगों को ढोया जाता है। इन सभी समस्याओं से ध्यान हटाने के लिए भाजपा और संघ देश में दंगों की पूरी तैयारी कर रहे हैं। मोदी और उसकी मण्डली अच्छी तरह जानती है कि उदारीकरण और निजीकरण के दौर (1991-92 में कांग्रेस ने लागू की थी) में आम जनता को कुछ भी हासिल नहीं होगा। पहले 10 साल मनमोहन की सरकार ने अडानी-अम्बानी-टाटा की जमात की सेवा की और अब मोदी सरकार नंगे रूप में गाय और हिन्दुत्व की आड़ में वही काम कर रही है। जनता की ख़ून-पसीने की गाढ़ी कमाई कॉर्पोरेट घराने दिन-दिहाड़े लूट रहे हैं और नेता मन्त्री सब मस्त हैं। आज नेता-मन्त्रियों, अदानियों, अम्बानियों तथा डाकुओं में कोई फ़र्क़ नहीं रह गया है।

जनता को जाति-धर्म के नाम पर आपस में लड़ाकर ही इस लूट और बर्बादी को जारी रखा जा सकता है - यह बात पूँजीपतियों-कॉर्पोरेट घरानों के टुकड़खोर संघी-भाजपा अच्छी तरह से जानते हैं। इसीलिए कोई भी मौक़ा हो, ये जनता को हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर लड़ाते हैं। कभी खुले में नमाज़ तो कभी गाय तो कभी मन्दिर। अभी हरियाणा के हर गाँव में खट्टर-मोदी योगशाला खोल रहे हैं और उनको संघ की पाठशाला बनाने की चाल है क्योंकि हरियाणा के गाँवों में लोग संघियों को सन्देह की नज़र से देखते हैं। ये संघी जानते हैं कि देश में जब नौजवान आपने हक़ों के लिए बग़ावत करेंगे तो हरियाणा के नौजवानों को पहले ही आपस में जाट-ग़ैर जाट और गाय-गोबर के मुद्दे पे आपस में बाँट दो। यह हरियाणा के नौजवानों को फासीवाद के लैठेत बनाने की तैयारी चल रही है। नहीं तो इनको क्या पड़ी है लोगों के लिए योगशाला खोलें, जिस राज्य में स्कूल-कॉलेजों में अध्यापकों और स्टाफ़ के लाखो पद ख़ाली पड़े हों, वहाँ मूलभूत ज़रूरत क्या है जिसे प्राथमिकता में लेकर पूरा किया जाये, यह बताने की ज़रूरत नहीं है!

इसलिए आज यह समझना भी बेहद अहम हो गया है कि अगर गाँवों में फासीवादी गोलबन्दी और प्रतिक्रियावादी आन्दोलन के बरक्स ग्रामीण ग़रीबों के क्रान्तिकारी संगठन खड़े नहीं किये जाते तो आने वाले समय में भयंकर संकट का सामना करना होगा। अभी से ही गाँवों के नौजवानों के क्रान्तिकारी संगठन, जातितोड़क संगठन, ग्रामीण मज़दूरों की यूनियन, खेतिहर मज़दूरों की यूनियन बनाने के साथ-साथ ग़रीब और परिधिगत किसानों के संगठन भी बनाने होंगे। ताज़ा आँकड़े बता रहे हैं कि ये वर्ग आज गाँवों में बहुसंख्यक हैं। मगर वे स्वयं ही क्रान्तिकारी गोलबन्दी नहीं कर सकते हैं। वहाँ क्रान्तिकारी अभिकर्ता की और भी ज़्यादा ज़रूरत है। ऐसे में, क्रान्तिकारी ताक़तों को गाँवों में भी अपने क्रान्तिकारी जनसंगठनों का नेटवर्क तैयार करने और अपना व्यापक सामाजिक आधार बनाने पर कार्य करना होगा।

– रमेश खटकड़

बर्बर ज़ायनवादियों ने ग़ाज़ा में करवाया एक और क़त्लेआम

फ़िलिस्तीनियों ने पेश की बहादुराना प्रतिरोध की एक और मिसाल

आनन्द सिंह

गत 14 मई को यरूशलम में अमेरिकी दूतावास के उद्घाटन के दौरान इज़रायल का रक्तपिपासु प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू जिस समय उस क्षण को ऐतिहासिक क्षण बता रहा था, ठीक उसी समय इज़रायल की सेना ग़ाजा पट्टी की सीमा पर एकत्र फ़िलिस्तीनी प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ बरसा रही थी और ड्रोन के ज़रिये हवाई मार्ग से आँसू गैस के गोले दाग रही थी। इज़रायल के समूचे इतिहास की तरह यह 'ऐतिहासिक क्षण' भी निर्दोष फ़िलिस्तीनियों के खून के छींटों से सराबोर हो गया क्योंकि उस दिन इज़रायली गोलीबारी में मासूम बच्चों सहित 60 से ज़्यादा फ़िलिस्तीनी शहीद हो गए और लगभग 3000 लोग ज़ख्मी हुए। बर्बर ज़ायनवादियों ने जानबूझकर यरूशलम में अमेरिकी दूतावास का उद्घाटन ऐसे दिन करवाया जिसे फ़िलिस्तीन के लोग 'नक़्बा' (महाविपदा) के रूप में शोकपूर्वक याद करते हैं क्योंकि 70 साल पहले इसी दिन इज़रायली राष्ट्र का जन्म हुआ और जिसके बाद बड़े पैमाने पर क़त्ले आम हुआ और साढ़े सात लाख फ़िलिस्तीनियों को अपनी ही ज़मीन से बेदख़ल कर दिया गया। उसके बाद से ज़ायनवादियों ने अनगिनत क़त्ले आम अंज़ाम दिए हैं। मौजूदा क़त्ले आम को इसी कड़ी में है। लेकिन अगर ज़ायनवादियों को लगता है कि ऐसे बर्बर क़त्ले आम से वे ग़ाज़ा के बहादुराना प्रतिरोध को कुचल देंगे तो वे भयंकर मुग़ालते में हैं। सच तो यह है कि इस बहादुराना प्रतिरोध को खून में डुबो देने की तमाम साज़िशों के बावजूद यह प्रतिरोध जारी है और उसके पक्ष में दुनिया भर के इंसाफ़पसन्द लोग खड़े हैं।

ग़ौरतलब है कि ग़ाज़ापट्टी की सीमा पर पिछले 30 मार्च से ही ग़ाज़ा के लोग फ़िलिस्तीनी शरणार्थियों की वापसी के लिए, ग़ाज़ा की घेरेबन्दी ख़त्म करने के लिए और इज़रायल में अमेरिकी दूतावास के तेल अवीव से यरूशलम स्थानान्तरित करने के ट्रम्प प्रशासन के फैसले के ख़िलाफ़ 'ग्रेट मार्च ऑफ़ रिटर्न' नामक प्रदर्शन कर रहे थे। इस न्यायपूर्ण प्रदर्शन पर किए गए ज़ायनवादी हमलों में अब तक 100 से ज़्यादा प्रदर्शनकारियों की मौत हो चुकी है। 2014 में ग़ाज़ा पर की गई हवाई बमबारी के बाद से यह सबसे भीषण ज़ायनवादी हमला है। लेकिन हमेशा की ही तरह यह कायराना हमला ग़ाज़ा के लोगों की लड़ाकू स्पिरिट का बाल भी बांका नहीं कर सका। अत्याधुनिक हथियारों से लैस इज़रायली सेना का मुक़ाबला ग़ाज़ावासियों ने गुलेलों और पत्थरों से किया और इस प्रक्रिया में ज़ायनवादियों की कायरता और ग़ाज़ा की बहादुरी दोनों इतिहास में दर्ज़ हो गई।

पिछले साल के अन्त में ट्रम्प प्रशासन द्वारा यरूशलम को इज़रायल की राजधानी के रूप में मान्यता देने और अमेरिकी दूतावास को तेल अवीव से यरूशलम स्थानान्तरित करने की घोषणा के बाद से अमेरिका व इज़रायल की इस दबंगई के ख़िलाफ़ मुखर विरोध के स्वर पूरी दुनिया में उठे हैं। जहाँ एक ओर इस विरोध का नेतृत्व फ़िलिस्तीन के आम लोग कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर पूरी दुनिया के इंसाफ़पसन्द लोग इस लड़ाई में फ़िलिस्तीनियों के समर्थन में अपने-अपने देशों में रैलियाँ निकाल रहे हैं।

यरूशलम विवाद: इतिहास के आइने में

ग़ौरतलब है कि 1948 में इज़रायल नामक राष्ट्र के जन्मकाल के समय से ही यरूशलम शहर की स्थिति को लेकर चल रहा विवाद फ़िलिस्तीन के प्रश्न का एक अहम पहलू रहा है। 1947 की संयुक्त राष्ट्र की योजना में भी यरूशलम के प्रशासन को एक विशेष अन्तरराष्ट्रीय संस्था के हवाले करने का प्रावधान था जिसे अरब देशों ने खारिज कर दिया था। 1948 में इज़रायल की स्थापना की घोषणा के फ़ौरन बाद इज़रायल और अरब देशों के बीच क़रीब 10 महीने तक युद्ध की स्थिति बनी रही जिसके बाद संयुक्त राष्ट्र की मध्यस्थता में युद्धविराम की संधि पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार यरूशलम के पश्चिमी हिस्से पर इज़रायल का अधिकार हो गया जबकि पूर्वी यरूशलम जॉर्डन के नियन्त्रण में रहा।

पूर्वी यरूशलम इस्लाम, यहूदी और ईसाई तीनों की धर्मों के अनुयायियों द्वारा अपने-अपने धर्म का पवित्र स्थल माना जाता है। पूर्वी यरूशलम में ही पुराने शहर का वह हिस्सा आता है जिसमें 'हरम-अल-शरीफ़' मस्ज़िद स्थित है जो अरब के लोगों के लिए सबसे पवित्र स्थानों में से एक मानी जाती है। यहूदी लोग इस परिसर को 'टेम्पल माउण्ट' कहते हैं। इसी परिसर में अल-अक्सा मस्जिद भी स्थित है जिसे इस्लाम की तीसरी सबसे पवित्र मस्जिद के रूप में मान्यता प्राप्त है। 1967 के अरब-इज़रायल युद्ध के बाद पूर्वी यरूशलम का हिस्सा भी इज़रायली क़ब्ज़े में आ गया। हालाँकि इस क़ब्ज़े को अब तक अन्तरराष्ट्रीय मान्यता नहीं मिली है क्योंकि जेनेवा कन्वेंशन के मुताबिक युद्ध के ज़रिये क़ब्ज़ा किये गये भूक्षेत्र की स्थिति सैन्य क़ब्ज़े की होती है। अभी दिसम्बर 2016 में ही संयुक्त राष्ट्र में एक प्रस्ताव पारित किया गया था जिसमें यह साफ़ लिखा था कि फ़िलिस्तीन का भूक्षेत्र इज़रायली सैन्य क़ब्ज़े में है। फ़िलिस्तीन के लोगों का पूर्वी यरूशलम से गहरा भावनात्मक लगाव है और वे उसे भविष्य के स्वतन्त्र और एकजुट फ़िलिस्तीन राज्य की राजधानी के रूप में देखते हैं। यरूशलम की विवादित स्थिति के मद्देनज़र ही 1978 के कैम्प डेविड समझौते और 1993 के ओस्लो समझौते में भी यरूशलम की स्थिति को भविष्य में फैसलाकुन बातचीत के लिए टाल दिया गया था। ग़ौरतलब है कि वर्ष 2000 में दूसरे इन्तिफ़ादा की चिंगारी उस समय के इज़रायल के विपक्षी नेता और पूर्व राष्ट्रपति एरियल शैरोन द्वारा 'टेम्पल माउण्ट' के परिसर में प्रवेश करने के बाद ही भड़की थी।

बौराये हाथी की तरह आचरण करता अमेरिकी साम्राज्यवाद

हाल के समय में ट्रम्प प्रशासन ने एक के बाद एक कुछ ऐसे आक्रामक फैसले लिए हैं जो दिखाते हैं कि अमेरिकी साम्राज्यवाद का हाथी मध्यपूर्व के दलदल में बुरी तरह फँस गया है। ऊपर से आक्रामक दिखने वाले ये फैसले दरअसल अमेरिकी साम्राज्यवाद की बौखलाहट की ही निशानी है। यरूशलम को इज़रायल की राजधानी के रूप में मान्यता देने का फैसला अमेरिकी साम्राज्यवाद की बौखलाहट ही दिखा रहा है। सीरिया में प्रत्यक्ष हमले करने और ईरान से परमाणु करार को तोड़ने के फैसलों को भी इसी रोशनी में देखा जाना चाहिए। इस बौखलाहट का मुख्य कारण यह है कि हाल के समय में समूचे मध्यपूर्व में रूस-ईरान-सीरिया-हिजबुल्ला का पलड़ा अमेरिका-इज़रायल-सऊदी अरब की तुलना में भारी पड़ता नज़र आ रहा है।

इस फ़िलिस्तीनी नौजवान की यह तस्वीर पूरी दुनिया में प्रतिरोध के साहस का प्रतीक बन गयी है। 2008 में इज़रायल की बमबारी में घायल इस नौजवान के दोनों पैर काटने पड़े थे। ग़ाज़ा के विरोध प्रदर्शनों में यह अपनी व्हील चेयर पर ही बैठकर शामिल हुआ था। इस प्रदर्शन के दो दिन इज़रायली सैनिकों ने उसे गोली मार दी।

ग़ाज़ा नहीं मरेगा

ग़ाज़ा के लोग बरसों से एक खुले कारागार की घुटन भरी फ़िज़ा में जीने को मजबूर हैं। कुछ वर्षों के अन्तराल पर इज़रायल अमेरिका की शह और अपने अत्याधुनिक हथियारों के बूते छोटे-बड़े नरसंहार को अंजाम देता रहता है। इन नरसंहारों के बीच की अवधि में भी ग़ाज़ा में आम जीवन किसी नरक से कम नहीं होता। इज़रायल ने ज़मीन, वायु और समुद्र तीनों ही रास्तों से ग़ाज़ा की नाकेबन्दी कर रखी है जिसकी वजह से भोजन और दवा जैसी बेहद बुनियादी चीज़ें भी वहाँ आसानी से नहीं पहुँच पाती हैं। ग़ाज़ा का 95 प्रतिशत पानी पीने योग्य नहीं है। वहाँ बिजली औसतन केवल 4 घंटे ही आती है। ग़ाज़ा के 45 प्रतिशत युवा बेरोज़गार हैं। वहाँ के लगभग आधे बच्चे में खून की कमी के शिकार हैं और आधे बच्चों में जीने की इच्छा नहीं बची है।

ये वो हालात हैं जो ग़ाज़ा के लोगों को बग़ावत के लिए प्रेरित कर रहे हैं। अत्याधुनिक हथियारों से लैस इज़रायली सेना का मुक़बला ग़ाज़ावासी पत्थरों और गुलेल से कर रहे हैं और इस प्रक्रिया में बहादुराना प्रतिरोध की एक अद्भुत मिसाल पेश कर रहे हैं। इस बहादुराना संघर्ष को दुनिया के अलग-अलग हिस्सों से समर्थन मिल रहा है। अमेरिका से लेकर यूरोप तक और अफ़्रीका से लेकर अफ़्रीका तक में ग़ाज़ा के समर्थन और इज़रायल के विरोध में रैलियाँ निकल रही हैं और फ़िलिस्तीनियों का संघर्ष स्थानीय न रहकर वैश्विक रूप धारण कर चुका है। कई देशों में इज़रायल के बहिष्कार का आन्दोलन गति पकड़ रहा है। ऐसे में स्पष्ट है कि बर्बर ज़ायनवादी ग़ाज़ा को नेस्तनाबूद करने के लिए जितना ही ज़्यादा बलप्रयोग करेंगे उतनी ही तेज़ी से उनके ख़िलाफ़ जारी मुहिम दुनिया भर में फैलेगी। मध्यपूर्व में जारी अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा में अमेरिकी साम्राज्यवादी खेमे के पलड़े के हल्के होने और अरब देशों के शासकों की फ़िलिस्तीन के मसले पर वायदाख़िलाफ़ी को लेकर वहाँ की जनता में आक्रोश भी फ़िलिस्तीनी संघर्ष के पक्ष को मज़बूत करेगा। इतना तो तय है कि हथियारों के बूते कुछ लोगों का क़त्ले आम तो किया जा सकता है लेकिन गाज़ा की जुझारू स्पिरिट को नहीं ख़त्म किया जा सकता है।

पूँजीवादी जनतन्त्र के बारे में कार्ल मार्क्स के विचार

जनतन्त्र में पूँजीपति वर्ग का शासन मिट नहीं जाता। करोड़पति मज़दूरों में नहीं बदल जाते। बन्धुत्व और भाईचारे का नारा वर्ग वैरभाव को मिटा नहीं देता। बन्धुत्व एक सुखदायी विमुखता है, विरोधी वर्गों का भावुकतापूर्ण मेल है। बन्धुत्व वर्ग संघर्ष से ऊपर उठने की दिवास्वप्नमय कामना है। बन्धुत्व की भावना में एक उदार मादकता है जिसमें सर्वहारा और जनतन्त्रवादी झूमने लगते हैं। जनतन्त्र पुराने पूँजीवादी समाज का नया नृत्य परिधान है। यह पूँजीवाद को भयभीत नहीं करता, उससे भयभीत होता है। अप्रतिरोध और मधुर विनम्रता जनतन्त्र की मुख्य विशेषता है। जनतन्त्र कहता है सुविधाप्राप्त वर्गों से छेड़छाड़ नहीं। सर्वहारा लड़ता है समाजवाद के लिए, उसे मिलता है जनतन्त्र। सर्वहारा जनतन्त्र को अपनी ही रची वस्तु समझने की भूल करता है। सरकारें जनतन्त्र को पूँजीपति वर्ग के अनुकूल बनाने की कोशिश करती हैं। जनतन्त्र हथियारों के दम पर मज़दूरों की माँगें ठुकरा देता है। जनतन्त्र हथियारों के दम पर मज़दूरों को दी गयी रियायतें वापस ले लेता है। पूँजीपतियों का विश्वास जीतने के लिए जनतन्त्र ऋणदाताओं को ब्याज देने में पूरा जोश दिखाता है। पूँजीपतियों पर अपना ख़ज़ाना लुटा कर जनतन्त्र वित्तीय संकट मोल लेता है। जनतन्त्र निम्नपूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग को वित्तीय पूँजीपति वर्ग की माँद में भेज देता है। जनतन्त्र से मज़दूर वर्ग को मिली रियायतें पूँजीपति वर्ग के पाँव में बेड़ियों की तरह होती हैं। मज़दूरों की मुक्ति पूँजीवादी जनतन्त्र के लिए असहनीय ख़तरा है। जनतन्त्र मज़दूरों से हमेशा सम्बन्ध तोड़ने की फ़िराक में रहता है। सर्वहारा वर्ग के विप्लव को कुचलने की निर्णायक घड़ी में जनतन्त्र बन्धुत्व के नारे को गृहयुद्ध में बदल देता है। वह सारी समाजवादी रियायतें छीन लेता है। वह मज़दूरों के नेताओं का क़त्ल करवाता है। जनतन्त्र में गृहयुद्ध श्रम और पूँजी के बीच युद्ध में बदल जाता है। बन्धुत्व और भाईचारा धूधू कर जल उठता है। बन्धुत्व तभी तक जबतक पूँजीपति के हितों का मज़दूरों के हितों से बन्धुत्व हो। मज़दूरों की माँग कल्पना से यथार्थ बनने लगे तो पूँजीवादी शासन पूँजीवादी आतंक में बदल जाता है।

संसदीय रूपों से अलंकृत, सामंती मिलावट से अधिमिश्रित, पूँजीपति वर्ग से प्रभावित, नौकरशाही द्वारा विरचित, पुलिस द्वारा संरक्षित पूँजीवादी समाज इसी राज्य का आधार है। इसमें जनवाद वहीं तक होता है जहाँ तक पुलिस और सेना इसकी इजाज़त देती है। संसदीय जनतन्त्र यानी लुटेरों का ज्वायंट स्टॉक, वर्ग आतंक की हुकूमत। पूँजी संसदीय जनतन्त्र का युद्ध मशीनरी की तरह इस्तेमाल करती है।

अमिताभ बच्चन (कवि)
द्वारा प्रस्तुत

नेशनल पेंशन स्कीम - कर्मचारियों के हक़ों पर डकैती डालने की नयी स्कीम

(पेज 1 से आगे)

होता है, पूँजीवादी व्यवस्था अपने तात्कालिक संकट को भविष्य के और बड़े संकट के रूप में टालती है। वास्तव में आज़ादी के बाद जनता के ख़ून-पसीने की कमी से जो पब्लिक सेक्टर खड़े किये गये थे, उन्हें 1990-91 में आर्थिक उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद एक-एक करके औने-पौने दामों पर पूँजीपतियों के हाथों में बेचा जा रहा है। तरह-तरह की तिकड़मों के ज़रिये एक तरफ़ सरकारी विभागों के पदों को ख़त्म किया जा रहा है। परमानेण्ट भर्तियों की तुलना में ठेके और संविदा पर की जाने वाली नौकरियों का प्रतिशत बढ़ाया जा रहा है। कर्मचारियों को मिलने वाले पेंशन-भत्तों जैसे अधिकारों में कटौती की जा रही है। इन कटौतियों के ख़िलाफ़ रेलवे, बैंक, बिजली, रोडवेज आदि के कर्मचारी लगातार संघर्षरत हैं। अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश के पाँच महानगरों की बिजली को निजी हाथों में सौंपने के ख़िलाफ़ बिजली विभाग के कर्मचारी आन्दोलनरत थे। आगामी चुनाव के मद्देनज़र सरकार ने फ़िलहाल यह फ़ैसला वापस ले लिया है, लेकिन कर्मचारियों को भी यह अन्देशा है कि सरकार इस फ़ैसले को अमल में ले आयेगी। भाजपा सरकार की फासीवादी जनविरोधी नीतियों का विरोध करते हुए हमें यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि कांग्रेस, सपा-बसपा आदि कोई भी चुनावी पार्टी सत्ता में आयेगी तो इन कर्मचारी विरोधी नीतियों को ही आगे बढ़ाने का काम करेगी। वास्तव में पूँजीवादी व्यवस्था में सरकार चाहे जिसकी हो, वह पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के रूप में ही काम करती है। मौजूदा आर्थिक संकट के दौर में पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर में कमी आयी है, जिसकी वजह से वह बिलबिलाये हुए हैं। अपने मुनाफ़े की दर बरक़रार रखने के लिए वो सारे पब्लिक सेक्टर हड़प जाना चाहते हैं। यही वजह है कि पूँजीपतियों ने भाजपा जैसी फासीवादी पार्टी को सत्ता में लाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया। भाजपा पूरी मुस्तैदी से अपने आकाओं की इच्छाओं को पूरा करने में लगी है। छात्र-मज़दूर-कर्मचारी विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ संघर्ष को विघटित करने, कुचलने के लिए भाजपा सरकार दो हथकण्डे इस्तेमाल कर रही है। एक तरफ़ गाय, मन्दिर, धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक बँटवारा, दूसरी तरफ़ यूपीकोका जैसे बर्बरतापूर्ण काले क़ानून।

लगभग 50 हज़ार रेलकर्मियों द्वारा एनपीएस के विरोध में 13 मार्च को संसद मार्च करके जन्तर-मन्तर पर प्रदर्शन किया गया। इसी कड़ी में एनपीएस को रद्द करने के लिए एआईआरएफ़ के बैनर तले रेलकर्मियों ने बहत्तर घण्टे (8 मई से 11 मई) का क्रमिक अनशन किया। अटेवा से जुड़े कार्यकर्ता भी इस आन्दोलन के समर्थन में आये (ग़ौरतलब है कि अटेवा के नेतृत्व में हज़ारों कर्मचारियों ने संसद मार्च किया था)।

प्रयाग रेलवे स्टेशन पर प्रयाग मेन्स यूनियन के शाखा मन्त्री एलए जाफ़री के नेतृत्व में क्रमिक अनशन चला, जिसमें लखनऊ मण्डल के कोषाध्यक्ष कामरेड बब्बन भक्त ने रचनात्मक व उत्साहवर्धक उपस्थिति दर्ज करायी। इसके अलावा विजय कुमार मिश्रा, बीबी सिंह, एसके सिंह, बृजेश शुक्ल, रंजीत कुमार, मनोज कुमार, भगवानदीन, ब्रह्मदीन समेत 300 रेलकर्मियों ने हिस्सा लिया।

बिगुल मज़दूर दस्ता ने प्रयाग रेलवे स्टेशन पर चल रहे क्रमिक अनशन के समर्थन में विभिन्न रचनात्मक तरीक़ों से ज़ोरदार भागीदारी की। क्रमिक अनशन में दिशा छात्र संगठन और बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा क्रान्तिकारी गीत, नुक्कड़ नाटक 'मशीन' और मई दिवस पर बनी डाक्यूमेण्ट्री फ़िल्म 'लड़ाई ज़ारी है', 'मॉडर्न टाइम्स', 'एक ख़ूबसूरत जहाज़' व 'लीजेण्ड ऑफ़ भगतसिंह' फ़िल्मों का प्रदर्शन किया गया। बब्बन भक्त ने बताया कि रेलवे में वर्तमान में 13.26 लाख कर्मचारी कार्यरत हैं, जिनमें से 5.86 लाख कर्मचारी पुरानी पेंशन के अधिकार को खो चुके हैं। इतना ही नहीं, रेलवे में लगभग 4 लाख पद ख़ाली हैं और हर वर्ष लगभग 1 लाख कर्मचारी रिटायर हो रहे हैं, जबकि नयी भर्तियाँ न के बराबर हो रही हैं और बहुत सारे पदों को समाप्त किया जा रहा है और ठेके पर दिया जा रहा है। रेलवे में होने वाली दुर्घटनाओं व देरी के लिए यह भी एक वजह है, लेकिन सारा ठीकरा कर्मचारियों के सिर पर फोड़ दिया जाता है।

बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने कहा कि कर्मचारियों को अपने आन्दोलन को मुक़ाम तक पहुँचाने के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है। सबसे पहली बात यह है कि कर्मचारियों के आन्दोलन को चुनावबाज़ पार्टियों और संशोधनवादियों के नेतृत्व से मुक्त करना होगा, क्योंकि तमाम गरम-गरम बातों के बावजूद सच्चाई यही है कि वे सरकार के ख़िलाफ़ व्यापक जुझारू आन्दोलन कभी नहीं चलायेंगे। दूसरी बात कर्मचारियों को अपने आन्दोलन को छात्रों और असंगठित क्षेत्र के करोड़ों मज़दूरों के संघर्षों के साथ जोड़ना होगा जो आज निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों की मार से त्रस्त हैं। तमाम विभागों में लाखों पद ख़ाली हैं, लेकिन उन्हें भरा नहीं जा रहा है। यह बात युवाओं के भविष्य से सीधे जाकर जुड़ती है। यही नहीं, तमाम विभागों में बहुत सारे पद ठेके पर दे दिये गये हैं, जिनको न्यूनतम मज़दूरी तक हासिल नहीं होती। अगर इसके ख़िलाफ़ छात्रों-मज़दूरों-कर्मचारियों की व्यापक एकजुटता बने तभी कुछ हासिल किया जा सकता है। तीसरी बात, कर्मचारियों के आन्दोलन में एक चीज़ जो बहुत खटकती है, वह कर्मचारियों में राजनीतिक चेतना का अभाव व सरकार के कर्मचारी विरोधी नीतियों को व्यापक स्तर पर प्रचारित न कर पाने की कमी। 1974 में कर्मचारियों की ऐतिहासिक हड़ताल के बाद बहुत सारे कर्मचारी निकाल बाहर किये गये थे। उनको दुबारा काम पर नहीं रखा गया था। मौजूदा बेरोज़गारी के भयानक संकट के दौर में बहुत सारे कर्मचारी अपने हक़-अधिकारों की कटौती पर भी पुराने अनुभव की वजह से चुप रह जाते हैं। जिसका नतीजा होता है कि पूरी ताक़त के साथ प्रतिरोध खड़ा नहीं हो पाता। वहीं, सरकार के कर्मचारी विरोधी फ़ैसलों को देश की व्यापक जनता तक पहुँचाने के लिए पर्चे, अख़बार आदि माध्यमों का व्यापक इस्तेमाल नहीं हो पाता। जबकि सरकार पूँजीवादी मीडिया के ज़रिये सच्चाई की एकदम उलटी तस्वीर लगातार जनता तक पहुँचाती रहती है। चूँकि ये नीतियाँ चुनावी पार्टियों की अदला-बदली से ख़त्म नहीं की जा सकतीं, इसलिए कर्मचारियों को लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी, इसके लिए कर्मचारियों के अध्ययन चक्र, विचार गोष्ठी, फ़िल्म शो, पुस्तकालयों का निर्माण, गायन-नाटक मण्डली आदि संगठित करने होंगे, ताकि संघर्ष को निरन्तरता, गहराई व व्यापकता दी जा सके। और आख़िरी बात यह कि इन सारी समस्याओं से तब तक निजात नहीं मिल सकता, जब तक कि पूँजीवादी व्यवस्था को उसकी क़ब्र में दफ़न न कर दिया जाये। इसलिए अपने संघर्ष को इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की कड़ी के रूप में जोड़ना होगा।

जागो दुनिया के मज़दूर!

सेवा और मेहनत की मूर्ति,
शोषित होना है दस्तूर।
गुस्सा कभी जीवन में न आया,
भूल के कभी न किया गुरूर।
अब चेतने का समय आ गया,
जागो दुनिया के मज़दूर।
विश्व प्रगति से क़दम मिलाकर
उन्नति ख़ातिर अपने को खपाकर
अमीरों को हर सुख पहुँचाया,
अपने बच्चों को भूखा सुलाकर।
जीवन को तुमने हवन कर दिया,
रहे सुविधा से कोसों दूर।
अब चेतने का समय आ गया,
जागो दुनिया के मज़दूर।
बिना खाये फ़ुटपाथ पर सोया,
लेकिन सुन्दर नगर बनाया।
पगडण्डी है तेरी आज भी नंगी,
लेकिन अमीरों की पक्की डगर बनाया।
उजड़े गाँवों से लाकर जवानी,
बड़े लोगों का शहर बनाया।
रेगिस्तान जो बना चुनौती,
वहाँ भी तुमने नहर बनाया।
आज भी पूँजीपति वर्ग है,
तेरे प्रति बहुत ही क्रूर।
अब चेतने का समय आ गया,
जागो दुनिया के मज़दूर।
विश्व चमन जो हुआ है पुष्पित,
सींचा है तुमने देकर ख़ून।
अतिशय ठण्डक या भीषण गर्मी,
रहे जनवरी या हो जून।

चौदह लुंगियाँ फट जाती हैं,
तब बनती है एक पतलून।
ईंट ईंट से महल बनाया,
वाशिंगटन हो जा रंगून।
मज़दूरी बस एक धर्म है,
मेहनत ही तेरा है सुरूर।
अब चेतने का समय आ गया,
जागो दुनिया के मज़दूर।
स्वर्ण चतुर्भुज सड़क योजना,
या हावड़ा का हो जूट मिल।
नींव की ईंट मज़दूर बनेगा,
तब दुनिया देखेगी मंज़िल।
जीवन को खाद जब तुम हो बनाते,
अमीरों की जाती कलियाँ खिल।
श्रम की नैया जीवन भर खेकर,
पाते तुम न कभी साहिल।
सारे सपने हो जाते हैं,
देखते-देखते चकनाचूर।
अब चेतने का समय आ गया,
जागो दुनिया के मज़दूर।
पूस की रात के तुम हो हलकू,
और गोदान के होरी तुम।
मन में व्यथा और दिल में दर्द है,
जुबाँ फिर भी रखते गुमसुम।
कोयले की खादानें चौड़ी करके,
हो जाते तुम उसी में गुम।
अनेकों पीढ़ियाँ हो गयीं,
फिर भी ख़ुशियों से रहे महरूम।
ख़ुद मोमबत्ती बनकर जला है,
ताकि मिले औरों को नूर।
अब चेतने का समय आ गया,
जागो दुनिया के मज़दूर।
तेरे पसीने से जुड़े हुए हैं,
ताजमहल के संगमरमर।
पेंटागन तुमने था बनाया,
आधा खाकर नंगे रहकर।
मिस्र की पिरामिड देन है तेरी,
जो है इतिहास की धरोहर।
अपमान का तोहफ़ा, पग-पग पर मिला है,
जवानी और जीवन खोकर।
बहुत हो चुका है संगठित हो जाओ,
ताकि तेरा अभिषेक हो।
जाति केवल 'मज़दूर' है तेरी,
चाहे क्षेत्र अनेक हों।
दुनिया भर के मज़दूरों,
एक हो, एक हो।

- बब्बन भक्त
वरिष्ठ खण्ड अभियन्ता (रेलपथ)
उत्तर रेलवे प्रयाग

मार्क्सवाद और सुधारवाद

– लेनिन

अराजकतावादियों के विपरीत मार्क्सवादी सुधारों के लिए संघर्ष को, यानी मेहनतकशों की दशा में ऐसे सुधारों के लिए संघर्ष को स्वीकार करते हैं, जो सत्तारूढ़ वर्ग की सत्ता को नष्ट न करते हों। परन्तु इसके साथ ही मार्क्सवादी उन सुधारवादियों के विरुद्ध सर्वाधिक संकल्पपूर्वक संघर्ष करते हैं, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में मज़दूर वर्ग के प्रयासों तथा गतिविधियों को सुधारों तक सीमित करते हैं। सुधारवाद मज़दूरों के साथ बुर्जुआ धोखाधड़ी है, जो पृथक-पृथक सुधारों के बावजूद तब तक सदैव उजरती दास बने रहेंगे, जब तक पूँजी का प्रभुत्व विद्यमान है।

उदारतावादी बुर्जुआ एक हाथ से सुधार देते हैं और दूसरे हाथ से सदैव उन्हें छीन लेते हैं, उन्हें समेटकर शून्य बना डालते हैं, मज़दूरों को दास बनाने के लिए, उन्हें पृथक-पृथक ग्रुपों में विभक्त करने के लिए, मेहनतकशों की उजरती दासता बनाये रखने के लिए उनका इस्तेमाल करते हैं। इस कारण सुधारवाद, उस समय भी, जब वह पूर्णत: निष्कपट होता है, व्यवहार में मज़दूरों को भ्रष्ट और कमज़ोर बनाने का बुर्जुआ हथियार बन जाता है। समस्त देशों का अनुभव बताता है कि सुधारवादियों पर विश्वास करने वाले मज़दूर सदैव बेवक़ूफ़ बन जाते हैं।

इसके विपरीत, यदि मज़दूर मार्क्स के सिद्धान्त को आत्मसात कर लेते हैं, यानी वे पूँजी के प्रभुत्व के बने रहते उजरती दासता की अपरिहार्यता को अनुभव कर लेते हैं, तो वे किसी भी बुर्जुआ सुधारों से अपने को बेवक़ूफ़ नहीं बनने देंगे। यह समझकर कि पूँजीवाद के बने रहते सुधार न तो स्थायी और न महत्वपूर्ण हो सकते हैं, मज़दूर बेहतर परिस्थितियों के लिए लड़ते हैं तथा उजरती दासता के विरुद्ध और डटकर संघर्ष जारी रखने के लिए बेहतर परिस्थितियों का उपयोग करते हैं। सुधारवादी छोटी-मोटी रियायतों से मज़दूरों में फूट डालने, उनकी आँखों में धूल झोंकने, वर्ग संघर्ष की ओर से उनका ध्यान हटाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु मज़दूर सुधारवाद की मिथ्यावादिता को अनुभव कर चुकने के कारण अपने वर्ग संघर्ष का विकास तथा विस्तार करने के लिए सुधारों का उपयोग करते हैं।

सुधारवादियों का मज़दूरों पर प्रभाव जितना अधिक सशक्त होता है, मज़दूर उतने ही निर्बल होते हैं, बुर्जुआ वर्ग पर उनकी निर्भरता उतनी ही ज़्यादा होती है, तरह-तरह के दाँव-पेंचों से इन सुधारों को शून्य में परिणत कर देना बुर्जुआ वर्ग के लिए उतना आसान होता है। मज़दूर आन्दोलन जितना अधिक स्वावलम्बी तथा गहन होता है, उसके ध्येय जितने अधिक विस्तृत होते हैं, सुधारवादी संकीर्णता से वह जितना अधिक मुक्त होता है, मज़दूरों के लिए अलग-अलग सुधारों को सुदृढ़ बनाना तथा उनका उपयोग करना उतना ही आसान होता है।

सुधारवादी समस्त देशों में हैं, इसलिए बुर्जुआ वर्ग सर्वत्र मज़दूरों को इस या उस तरह भ्रष्ट करने, उन्हें ऐसे सन्तुष्ट दास बनाने का प्रयास करते हैं, जो दासता को मिटाने का विचार त्याग देते हैं। रूस में सुधारवादी विसर्जनवादी हैं, जो हमारे अतीत को ठुकराते हैं, ताकि मज़दूरों को नयी, खुली, क़ानूनी पार्टी के बारे में मीठी-मीठी लोरियाँ सुनाकर सुलाया जाये। हाल में 'सेवेरनाया प्रावदा'[1] ने सेण्ट पीटर्सबर्ग के विसर्जनवादियों को सुधारवाद के आरोप से अपना बचाव करने के लिए विवश किया था। उनकी दलीलों का ध्योनपूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए, ताकि एक अतीव महत्वपूर्ण प्रश्न का स्पष्टीकरण किया जा सके।

हम सुधारवादी नहीं हैं – सेण्ट पीटर्सबर्ग के विसर्जनवादियों ने लिखा – क्योंकि हमने यह नहीं कहा कि सुधार ही सब कुछ हैं, अन्तिम लक्ष्य कुछ नहीं; हमने अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ने की बात कही थी; हमने तो सुधारों के लिए संघर्ष के ज़रिये निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति की ओर बढ़ने की बात कही थी।

देखें कि यह बचाव तथ्यों से कैसे मेल खाता है।

पहला तथ्य। विसर्जनवादी सेदोव ने तमाम विसर्जनवादियों के बयानों का सार देते हुए लिखा था कि मार्क्सवादियों के "तीन स्तम्भों"[2] में से दो हमारे आन्दोलन के लिए उपयुक्त नहीं रह गये हैं। सेदोव ने आठ घण्टे का कार्य-दिवस रहने दिया, जिसे सिद्धान्तत: सुधार के रूप में हासिल किया जा सकता है। उन्होंने ठीक उन चीज़ों को, जो सुधारों के दायरे से बाहर जाती हैं, हटा दिया या पृष्ठभूमि में पहुँचा दिया। फलस्वरूप, सेदोव ठीक उस नीति का, जो इस फ़ार्मूला में अभिव्यक्त है कि अन्तिम लक्ष्य कुछ नहीं, अनुसरण करते हुए सीधे-सीधे अवसरवाद में जा धँसे। यह है सुधारवाद, जब "अन्तिम लक्ष्य" (जनवाद के सम्बन्ध तक में) को आन्दोलन से दूर धकेल दिया जाता है।

दूसरा तथ्य। विसर्जनवादियों के कुख्यात अगस्त (गत वर्ष के) सम्मेलन[3] ने भी असुधारवादी माँगों को नज़दीक लाने, हमारे आन्दोलन की स्वयं हृदय-स्थली तक लाने के बजाय उन्हें – किसी ख़ास मौक़े तक – दूर धकेल दिया।

तीसरा तथ्य। "पुराने"[4] को ठुकराकर तथा उसका तिरस्कार कर, उससे अपने को अलग कर विसर्जनवादी अपने को इस तरह सुधारवाद तक सीमित करते हैं। वर्तमान स्थिति में सुधारवाद तथा "पुराने" के परित्याग के बीच सम्बन्ध सुस्पष्ट है।

चौथा तथ्य। मज़दूरों का आर्थिक आन्दोलन ज्योंही सुधारवाद के बाहर जानेवाले नारों के साथ नाता जोड़ता है, वह विसर्जनवादियों के रोष तथा प्रहारों ("उत्तेजना," "हवा में तलवार घुमाने," आदि, आदि) को जन्म देता है।

परिणाम क्या निकलता है? शब्दों में तो विसर्जनवादी सिद्धान्त के रूप में सुधारवाद को ठुकरा देते हैं, परन्तु व्यवहार में वे आद्यन्त उसका अनुसरण करते हैं। एक ओर वे हमें यक़ीन दिलाते हैं कि उनके लिए सुधार क़तई सब कुछ नहीं है, परन्तु दूसरी ओर ज्योंही मार्क्सवादी व्यवहार में सुधारवाद के दायरे के बाहर बढ़ते हैं, विसर्जनवादी उन पर प्रहार करते हैं अथवा अपनी घृणा प्रकट करते हैं।

यह सब होते हुए भी मज़दूर आन्दोलन के तमाम क्षेत्रों में घटनाएँ हमें बताती हैं कि मार्क्सवादी सुधारों का व्यावहारिक उपयोग करने, उनके लिए संघर्ष करने में पीछे रहना तो दूर, बल्कि निश्चित रूप से आगे रहते हैं। मज़दूर श्रेणी[5] के स्तर पर दूमा के चुनावों को ले लें – दूमा के अन्दर तथा बाहर सदस्यों के भाषण, मज़दूर पत्र-पत्रिकाओं का संगठन, बीमा सुधार का उपयोग, सबसे बड़ी ट्रेड-यूनियन के रूप में धातुकर्मी यूनियन, आदि – आप सर्वत्र मार्क्सवादी मज़दूरों को आन्दोलन, संगठन के प्रत्यक्ष, फ़ौरी, "नित्यप्रति" कार्यों के क्षेत्र में, सुधारों के लिए संघर्ष तथा उनके उपयोग के क्षेत्र में विसर्जनवादियों से आगे देखते हैं।

मार्क्सवादी अथक रूप से कार्य कर रहे हैं, सुधार हासिल करने, उनका उपयोग करने का एक भी "मौक़ा" हाथ से नहीं जाने देते, प्रचार में, आन्दोलन में, व्यापक आर्थिक कार्रवाइयों, आदि में सुधारवाद के दायरे के बाहर जाने के प्रत्येक पग की निन्दा नहीं, उसका समर्थन तथा उसे अध्यवसायपूर्वक विकसित करते हैं। परन्तु मार्क्सवाद को तिलांजलि दे बैठे विसर्जनवादी मार्क्सवादी समष्टि के ठीक अस्तित्व पर प्रहार कर, मार्क्सवादी अनुशासन को नष्ट कर, सुधारवाद और उदारतावादी मज़दूर नीति का प्रचार कर मज़दूर आन्दोलन को केवल विसंगठित कर रहे हैं।

इसके अलावा यह तथ्य भी नज़र से ओझल नहीं किया जाना चाहिए कि रूस में सुधारवाद एक ख़ास रूप में, यानी वर्तमान रूस तथा वर्तमान यूरोप की राजनीतिक परिस्थिति की बुनियादी अवस्थाओं की सादृश्यता के रूप में व्यक्त होता है। उदारतावादी के दृष्टिकोण से यह सादृश्यता न्यायोचित है, इसलिए कि उदारतावादी यह विश्वास करता है और मानता है कि "ख़ुदा का शुक्र है, हमारे पास संविधान है"। उदारतावादी जब इस विचार की पैरवी करता है कि 17 अक्टूबर के बाद सुधारवाद के दायरे के बाहर जनवाद का प्रत्येक पग पागलपन, जुर्म, पाप, आदि है, तो वह बुर्जुआ वर्ग के हित व्यक्त करता है।

परन्तु ये ही बुर्जुआ विचार हमारे विसर्जनवादियों द्वारा अमल में लाये जा रहे हैं, जो "खुली पार्टी" तथा "क़ानूनी पार्टी के लिए संघर्ष," आदि को रूस में निरन्तर और क्रमबद्ध ढंग से (काग़ज़ पर) "रोप रहे हैं"। दूसरे शब्दों में, उदारतावादियों की भाँति वे उस विशेष पथ के बिना, जिसके फलस्वरूप यूरोप में संविधानों का निर्माण तथा पीढ़ियों के दौरान, कभी-कभी शताब्दियों के दौरान तक उनका सुदृढ़ीकरण हुआ, रूस में यूरोपीय संविधान रोपने की वकालत करते हैं। विसर्जनवादी तथा उदारतावादी, जैसा कि कहा जाता है, खाल को पानी में डाले बिना धोना चाहते हैं।

यूरोप में सुधारवाद का वास्तविक अर्थ है मार्क्सवाद को तिलांजलि देना तथा उसके स्थान पर बुर्जुआ "सामाजिक नीति" रखना। रूस में विसर्जनवादियों के सुधारवाद का अर्थ मात्र यही नहीं है, अपितु मार्क्सवादी संगठन को नष्ट करना, मज़दूर वर्ग के जनवादी कार्यभारों का परित्याग करना, उनके स्थान पर उदारतावादी मज़दूर नीति रखना भी है।

(12 सितम्बर, 1913 को प्रकाशित, सम्पूर्ण रचनाएँ, खण्ड 24)

टिप्पणियाँ

1 'सेवेरनाया प्राद्वा' ('उत्तरी सत्य') – 1 (14) अगस्त से 7 (20) सितम्बर, 1913 तक बोल्शेविक समाचारपत्र 'प्राद्वा' के कई नामों में से एक।

2 "तीन स्तम्भ" – मज़दूर वर्ग की तीन मुख्य क्रान्तिकारी माँगों का सांकेतिक नाम : जनवादी जनतन्त्र, ज़मींदारी भूस्वामित्व का उन्मूलन व भूमि का किसानों को हस्तान्तरण; आठ घण्टे का कार्य-दिवस जारी करना।

3 1912 का अगस्त सम्मेलन – त्रॉत्सकीवादियों, विसर्जनवादियों और अन्य अवसरवादियों का यह सम्मेलन अगस्त, 1912 में वियेना में हुआ था और इसके लिए विसर्जनवादियों के पीटर्सबर्ग तथा मास्को "पहल ग्रुपों," बुन्द तथा ट्रांसकाकेशियाई मेंशेविकों ने भी अपने डेलीगेट भेजे थे। सम्मेलन में भाग लेनेवाले अधिकांश लोग मज़दूर आन्दोलन से कटे हुए प्रवासी ग्रुपों के प्रतिनिधि थे। सम्मेलन के संगठनकर्ताओं का लक्ष्य इन सभी तरह-तरह के तत्वों को एकजुट करके एक अवसरवादी पार्टी बनाना था, किन्तु 'व्पेर्योद' ग्रुप, लातवियाई सामाजिक-जनवादियों, आदि के सम्मेलन से वाक-आउट कर जाने के कारण यह लक्ष्य पूरा न हो सका। सम्मेलन में त्रॉत्सकी की पहल पर एक पार्टी विरोधी गुट बनाया गया, जिसे अगस्त गुट कहा जाता था।

सम्मेलन ने सामाजिक-जनवादी कार्यनीति के सभी प्रश्नों पर पार्टी विरोधी और विसर्जनवादी प्रस्ताव पास किये और पार्टी द्वारा गुप्त रूप से अपनी कार्रवाइयाँ जारी रखे जाने का विरोध किया। जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की माँग के स्थान पर उसने सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता की माँग पर ज़ोर दिया, यद्यपि विभिन्न पार्टी कांग्रेसों के निर्णयों में उसे राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति मानकर निन्दनीय ठहराया जा चुका था।

4 जारशाही काल में वैध पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखे गये लेखों में लेनिन को प्राय: "ईसपी भाषा," यानी सांकेतिक, लाक्षणिक शब्द और मुहावरे इस्तेमाल करने पड़ते थे। उदाहरणार्थ, "रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी" के नाम के बदले वह "पुराना" शब्द प्रयोग करते थे और 'प्राद्वा' के पाठक समझ जाते थे कि आशय मज़दूर वर्ग की अरसे से अस्तित्वमान क्रान्तिकारी पार्टी से है, जिसे भंग करके उसके स्थान पर मेंशेविक-विसर्जनवादी "नयी", वैध, क्रान्तिकारी कार्यकलाप से कोई सम्बन्ध न रखनेवाली "व्यापक मज़दूर पार्टी" बनाना चाहते थे। आगे चलकर पाठक देखेंगे कि लेनिन ने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के लिए "मार्क्सवादी समष्टि" नाम भी इस्तेमाल किया है।

5 राज्य दूमा के सदस्यों का निर्वाचन तथाकथित श्रेणी (क्यूरिया) प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर होता था और श्रेणियों का निर्धारण सामाजिक संस्तर या सम्पत्ति के अनुसार किया जाता था। इस प्रकार मज़दूर मज़दूर श्रेणी के प्रतिनिधित्व की मात्रा के अनुसार चुनते थे, भूस्वामी (ज़मींदार) भूस्वामी श्रेणी के प्रतिनिधित्व की मात्रा के अनुसार, इत्यादि।

माओवादी चीन में रोज़मर्रा का जीवन

(इब्ने-इंशा के सफ़रनामे 'चलते हों तो चीन को चलिए' पर आधारित)

(पहली किश्त)

इब्ने-इंशा (1927-1978) पाकिस्तान के एक प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। एक कवि और व्यंग्यकार के तौर पर तो उनको शोहरत मिली ही परन्तु एक सफ़रनामा-निगार और अख़बारनवीसी के चलते भी उनको जाना जाता है। जालन्धर के फ़िलौर में पैदा हुए इंशा ने जापान, हाँगकाँग, भारत, चीन, अफ़गानिस्तान, ईरान, तुर्की, फ़्रांस, अमरीका, इंग्लैण्ड आदि देशों के सफ़र किये और इनके बारे में अपनी यादों को अपने ही व्यंग्यमय अन्दाज़ में कलम किया। इसी तरह उनका उर्दू में एक सफ़रनामा चीन के बारे में है जिसका नाम है - 'चलते हो तो चीन को चलें'। यह सफ़रनामा पाकिस्तान में तो जाना -पहचाना है, परन्तु भारत में सफ़रनामों में रुचि रखने वाले पाठकों तक ही अभी तक इसकी वाक़फ़ीयत और पहुँच है और यह संख्या भी काफ़ी कम ही है।

इंशा का यह चीनी सफ़रनामा ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक ऐतबार से बेहद अहम है। यह हमें चीन के उस गुज़रे हुए इंक़लाबी दौर के रूबरू करवाता है जो दौर आज जा चुका है, लेकिन जिसके सबक़ आज भी इंसाफ़पसन्द, संजीदा लोगों को भूले नहीं हैं और आज भी ऐसे कितने ही लोग इस दौर की प्राप्तियों और कमज़ोरियों, दोनों से सबक़ लेकर इस समाज को बेहतर बनाने के प्रयासों में लगे हुए हैं। यह इंशा की तरफ़ से हमारी पीढ़ी को दिया गया एक बहुमूल्य तोहफ़ा कहा जा सकता है। यह किताब चीन के उस इंक़लाबी माओवादी दौर के समय में लिखी गयी थी जब चीनी लोग एक नये समाज के निर्माण के लिए पूरे जी-जान से लगे हुए थे, न सिर्फ़ भौतिक प्रगति के नये मानक क़ायम कर रहे थे, बल्कि मूलभूत तौर पर ही नये मूल्यों-मान्यताओं का पूरे देश के गहन अन्दर तक संचार हो रहा था - जीने का एक नया तरीक़ा, चीज़ों और लोगों को देखने और समझने की एक नयी दृष्टि, आपसी समन्वय की ऐसी मिसालें जो इतिहास में पहले कभी न देखी गयी थीं - समग्रता में कहें तो पूरी सामाजिक बनावट ही स्वस्थ हो रही थी। इस किताब में से भी चीन की समाजवादी जीवन-शैली की एक झलक हमें देखने को मिलती है - इंशा जी के अपने ही व्यंग्यमय टोटकों के साथ! ऐसा नहीं है कि चीन के बारे में किताबों की कोई किल्लत है। पश्चिम में आज भी और माओवादी दौर के समय में भी चीन के बारे में किताबों की भरमार होती थी। लेकिन इन सभी किताबों की जो ख़ासियत थी, वह यह थी कि इनमें से तक़रीबन सभी ही पश्चिम के बुर्जुआ पूर्वाग्रहों और चीनी क्रान्ति के प्रति तिरस्कार से लबरेज़ थीं। क्रान्तिकारी चीन, जहाँ पर कि उस वक़्त क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित हो रहे थे, इस उथल-पुथल से हज़ारों मीलों की सुरक्षित दूरी बनाकर बैठे इन "महाविदों" ने अपने बन्द कमरों में से चीन के बारे में किताबों के ढेर लिख दिये जो वास्तविकताओं से मूलत: ही दूर थे। ख़ुद इंशा की सर्वग्राही नज़र ने ऐसी किताबें लिखे जाने के असल उद्देश्यों को ताड़ लिया था, इसी लिए तो इंशा अपनी इसी किताब के एक पाठ 'वूहान चलो, वूहान चलो' में लिखते हैं -

"...अफ़साने बनाना तो कोई हमारे पश्चिमी लेखकों से सीखे। चीन के मुत्तलिक़ अकेले अमरीका में इतनी किताबें छप चुकी हैं कि ऊपर तले रखें तो पहाड़ बन जाये लेकिन अक्सर इनमें से अधिकतर वाशिंगटन और न्यूयार्क में बैठकर लिखी गयी हैं। वहाँ रिसर्च के ऐसे अदारे हैं जो सीआईए की नेमतों से चलते हैं और ख़बरों के वाहिद नुमाइन्दे कहलाते हैं। चश्मदीद हालात लिखकर देने को तैयार हैं, आप सिर्फ़ उस पर अपना नाम दे दीजिए। बाअज़ प्रकाशक (मसलन प्राइगर) तो चलते ही सीआईए के पैसों से हैं। मशहूर रसाला एनकाउण्टर भी इन्हीं अदारों से साँठ-गाँठ रखता है। क़ीमत उसकी ढाई-तीन रुपये है लेकिन कराची के बुक-स्टालों पर एक-दो रुपए में मिल जाता है। मालूम हुआ कि पाकिस्तान में इल्म का नूर फैलाने के लिए उसकी क़ीमत ख़ास तौर पर रखी गयी है। हम चाहते हैं कि चीज़ें सस्ती हों लेकिन ऐसा नहीं कि कल-कलान्तर को अफ़ीम सस्ती हो जाये तो हम खाना शुरू कर दें और ज़हर की क़ीमत चौथाई रह जाये तो मौक़े का फ़ायदा उठाकर ख़ुदकुशी कर लें। आठ-आठ दस-दस आने की किताबों का सैलाब भी आया और बराबर आ रहा है जिनको स्टूडेण्ट एडिशन का नाम दिया जाता है। प्रोपेगैण्डा की किताबों में चन्द किताबें बेज़रर क़िस्म की भी डाल दी जाती हैं कि देखिए हमारा मक़सद तो फ़क़त शिक्षा का प्रसार करना है।"

"पिछले दिनों एक ऐसी किताब भी स्टाल पर देखी, जिसके लेखक के मुत्तल्क दावा किया गया है - कि उससे कोई बात चीन की छिपी हुई नहीं है। क्योंकि लेखक बरसों हांगकांग में रहा है। क्या ख़ूब! हांगकांग में बैठकर चीन के मुत्तल्क किताब लिखना ऐसा ही है जैसे कलकत्ते में बैठकर ढाके से प्रवास करके आने वाले धनी मारवाड़ियों से मुलाक़ात करके कोई पाकिस्तान के बारे में किताब लिख दे। चीन के कमियूनों से सम्बन्धित ऐसी-ऐसी हौलनाक किताबें और लेख पढ़ने में आये कि रातों की नींद हराम हो। मतला साफ़ हुआ तो देखा कि कुछ भी नहीं था। छोटे कोऑपरेटिव अदारों को बड़े कोऑपरेटिव अदारों में बदल दिया गया था कि वसाइल ज़ाया ना हों और उनसे ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाया जा सके। कोड़े लगा-लगा कर लोगों से मेहनत लेना महज़ लिखने वालों के ज़रखेज़ दिमाग़ की खोज है। कमियून क्या हैं ये हम भी देख आये हैं और हमसे पहले और बाद में जाने वाले भी। यहाँ टाइम, लाइफ़ और प्रोपेगैण्डा के दूसरे माध्यम शोर मचाते रह गये कि 1958 में Great Leap Forward ने चीन को दस साल पीछे पहुँचा दिया है। यह शोर थमा तो मालूम हुआ कि गहरी नींद सोये चीनी तो बीस साल और आगे बढ़ गये हैं। पीकिंग में दस माह के अरसे में दस अज़ीम आलीशान इमारतों की तामीर भी इसी "नाकाम" तहरीक़ के तहत हुई थी। यांग्सी दरिया, जहाँ कि आदम के समय से अभी तक पुल ना बना था, वहाँ का शानदार पुल भी इसी 'जस्त' में बना। शंघाई का भारी मशीनों का कारख़ाना देखिए तो अकल गुम हो जाये। बीच में रूस से बिगाड़ हुआ और रूसी सलाहकार मनसूबे अधूरे छोड़कर चीन से चले गये और कहा जाता है कि अपने मंसूबों के नक़्शे भी साथ ले गये। लेकिन बजाय इसके कि चीन के लोग बददिल होते, यह हरक़त उनके जज़्बों को चाबुक दे गयी।"

यदि इंक़लाबी दौर के समय में भी यह हालत थी तो सोचा जा सकता है कि जब 1976 में चीन में माओ की मृत्यु के बाद पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हुई तब से लेकर आज तक 'समाजवाद की हार' के नाम पर क्या-क्या कुत्सा-प्रचार प्रकाशित किया गया होगा और किया जा रहा है। इसीलिए एक ऐसे शख़्स का सफ़रनामा और भी बर-मौक़ा हो जाता है जो उस इंक़लाबी दौर में ख़ुद चीन में समय बिताकर आया हो और वहाँ के लोगों को नज़दीक से देखकर आया हो। जब इंशा ख़ुद यह सफ़रनामा लिख रहे थे तो उन्हें भी शायद यह अनुमान था कि इंक़लाबी चीन की कामयाबी के बारे में जो-जो उन्होंने लिखा है, उसे शायद बहुत ही कम लोग सच मानें। शायद इसीलिए उन्होंने अपनी किताब की प्रस्तावना में ही लिख दिया था -

"हम क्या और हमारा जाना क्या! जहाज़ में बैठे और ज़मीन की तनाबें खेंच लीं। अन्दरून-ए-चीन भी उड़न खटोले और धुएँ की गाड़ी से वास्ता रहा। यह भी कोई सैर है, ना सिर में गर्द, ना पायों में छाले। सैर-सफ़र की मर्यादा तो मारको पोलो ने रखी थी, इब्ने बतूता ने रखी थी। साहिबो, उन दिनों एक शख़्स उठती जवानी में सैर-ओ-सफ़र पर निकलता था तो वापसी पर, अगर वापसी होती थी तो, उसके पोते उसका स्वागत करते थे। कइयों को तो पहचानने वाले भी न मिलते थे। कम से कम मारको पोलो के साथ तो यही गुज़री, और जब उसने यूरोप के अँधेरे युग में जी रहे लोगों को चीन की चकाचौंध की कहानियाँ सुनायीं तो लोगों ने उसे दुनिया के सबसे बड़े झूठे का खिताब दिया।"

और यक़ीन करना इसीलिए भी मुश्किल था और है क्योंकि आज जिस पूँजीवादी समाज में हम रह रहे हैं, उस समाज के अन्दर यह सभी बातें असम्भव लगती हैं। ख़ुद उस वक़्त अमरीका के साप्ताहिक अख़बार 'न्यूज़वीक' ने उन पत्रकारों के हवाले से लिखा था जो कि राष्ट्रपति निक्सन की चीन यात्रा के समय उनके साथ गये थे -

"यह लोग जो कुछ बताते हैं, वो एक ख़्वाब मालूम होता है। ना-मुमकिन नज़र आता है, भला रूए-ज़मीन पर कोई ऐसा देश भी हो सकता है जिसमें अपराध ना हों, जिन्सी बीमारियाँ ना हों, गन्दी बस्तियाँ और झुग्गियाँ ना हों, फ़ज़ा और पानी गन्दे ना हों, शराब के आदी और नशेबाज़ ना हों, यहाँ तक कि छोटे बड़े, अफ़सर और मातहत का फ़र्क़ भी ना हो।"

बेशक यह एक पूँजीवादी समाज में रह रहे लोगों के लिए अचम्भा था, उनके ख़्याल से परे की बात थी। लेकिन यह महज़ 'सपना' नहीं था जैसा कि 'न्यूज़वीक' ने लिखा, बल्कि यह हक़ीकत थी या यूँ कहा जाये कि मानव मुक्ति के सपने को अमली जामा पहनाने की की गयी एक बड़ी कोशिश थी। और अपनी इन्हीं कोशिशों के चलते चीनी लोगों ने पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा और नेपोलियन की इस उक्ति को सच कर दिखाया कि, "चीनी धरती को सोने दो, क्योंकि यदि वह जाग गयी तो पूरी दुनिया को हिलाकर रख देगी।" बक़ौल इंशा -

"बेशक जब तक अपनी आँखों से ना देखो, यह यक़ीन नहीं आता कि कोई देश तरक्की भी कर रहा हो और इन बुराइयों से भी परे हो जिनका ऊपर ज़िकर आया है। जहाँ चोर ना हों और लोगों को घरों में ताले ना लगाने पड़ते हों, अमीरशाही ना हो और ज़ख़ीरेबाज़ी ना हो, बेरोज़गारी ना हो, फ़हाशी ना हो, ठा-ठा फ़िल्में ना हों और मिलावट ना हो, ट्रैफ़िक के हादसे ना हों और झूठी इश्तिहारबाज़ी ना हो। पूर्ण शिक्षा के साथ-साथ राजनीतिक शऊर का यह हाल कि 'न्यूज़वीक' ही के शब्दों में : "आप किसी चीनी किसान से कोई राजनीतिक सवाल कीजिए तो वह माकूल जवाब देगा। एशिया के किसी दूसरे देश के किसान की तरह बुद्धूओं की तरह मुँह नहीं ताक़ता रहेगा।"

"सेहत का यह इन्तज़ाम है कि डॉक्टर लोग शानदार दफ़्तरों में नहीं बैठते और देश से बाहर नौकरियों की तलाश नहीं करते, बल्कि लालटेन लेकर, दवाओं के बक्से उठाये गाँव-गाँव घूमते रहते हैं। यह वही चीनी लोग तो हैं जो कि सिर पर चोटियाँ रखे अफ़ीम के नशे में धुत्त रहते थे और जिनकी नैतिकता के नैन-नक्शों को अब भी हांगकांग और सिंगापोर की गलियों में देखा जा सकता है। लेकिन यह इंक़लाब - गहरी नींद सोये हुए चीनियों का इस तरह सँभलना कि चमत्कार मालूम होता है, कोई रातो-रात की बात नहीं, इसके पीछे जद्दो-जहद, क़ुर्बानियों और बेलूस क़ियादत की एक लम्बी दास्तान है।"

यह इब्ने-इंशा की ओर से अपने सफ़रनामे की लिखी गयी प्रस्तावना का हिस्सा था जिसमें वह इस बात पर ज़ोर देते हैं कि चीन के बारे में दूसरे नज़रिये से भी देखा जाना चाहिए और इस बात का अध्ययन करना चाहिए कि चीनियों ने यह कारनामा कैसे कर दिखाया। अभी हम इंशा के इस सफ़रनामे में से चुनिन्दा पाठ और हिस्सों को यहाँ पेश करेंगे। इस लेख का प्रारूप यह है कि मुख्यता यह मूल पुस्तक का अनुवाद ही है, जबकि जहाँ-जहाँ ज़रूरत पड़ी है, वहाँ कुछ बातें स्पष्ट करने के लिए टिप्पणियाँ की गयी हैं।

चीन में अख़बार तो होते हैं लेकिन ख़बरें नहीं

किसी क्षेत्र के लोग किस क़िस्म का साहित्य पढ़ते हैं, किस क़िस्म के राजनीतिक-सामाजिक मसलों में दिलचस्पी लेते हैं, इससे उस क्षेत्र के लोगों की मानसिक रुचि और सांस्कृतिक स्तर का भी पता चलता है। टीवी चैनलों वग़ैरा पर आते सास-बहू के सीरियल, साज़िशों के शो, पतित नाच-गाना, मसालेदार 'ख़बरें', सनसनी, आदि सभी हमारे मौजूदा भारतीय समाज की मानसिक गिरावट और बिगड़ी हुई सामाजिक बनावट का ही अक्स हैं। आइए सबसे पहले चीन के अख़बारों के बारे में इब्ने-इंशा के अनुभव को देखते हैं -

"अख़बार हमारी ज़िन्दगी का लाज़िम बन गया है। समझ में नहीं आता कि अख़बार न होते तो हम सुबह कैसे उठते और क्यों उठते? सुनते हैं देहात में लोग परिन्दों की हूक से बेदार होते हैं। लेकिन इस शहर में दरख़्त कहाँ कि इन पर परिन्दे बसर करें।"

"हम जो चीन गये तो सबसे पहला मसला यही पैदा हुआ। चीन में अख़बार होते तो हैं लेकिन चीनी ज़बान में। और वह भी शाम को निकलते हैं। सुबह निकलते तो कम से कम उनकी तस्वीरें देखने के लिए बाथरूम जाया जा सकता था। नतीजा अख़बार न देखने का यह हुआ कि हमारे अदीबों के वफ्द के अक्सर दोस्त क़ब्ज़ का शिकार हो गये। डॉक्टरों ने बहुत दवाएँ कीं लेकिन बेफ़ायदा। आख़िर हमने कहा - साहब पीआईए वालों से कहकर इनके लिए अख़बार मँगाना शुरू कीजिए। यह वह नशा नहीं है जिसे कड़वापन उतार दे। यह तो हमारे मेज़बानों के बस की बात न थी, क्योंकि हवाई जहाज़ हफ़्ते में फ़क़त दो दिन शंघाई जाता है। हाँ चीनी न्यूज़ एजेंसी का बुलेटिन उन्होंने भेजना शुरू कर दिया। इससे सूरते-हाल की पूरी तरह इस्लाह तो न हुई, लेकिन बाअज़ों का हाज़िमा पहले से बेहतर हो गया।"

"पीकिंग से जो हम वूहान रवाना हुए तो ख़बरों के इस बुलेटिन से भी अलहिदा हो गये। आख़िर हमने अपने तर्जमान से कहा कि भईया तुम हमें अख़बार पढ़कर सुनाया करो। क्योंकि जिन दिनों हम रवाना हुए हैं, अफ़्रीका के देशों में एक इंक़लाब रोज़ाना की औसत थी। बल्कि एक रोज़ तो दो दिन के अरसे में तीन इंक़लाब आये थे। उन्होंने कहा

(पेज 15 पर जारी)

क्या मैं अब भी कसूरवार नहीं हूँ?

(बेर्निस जॉनसन रीगन ने 1985 में इस गीत के बोल लिखे और संगीतबद्ध किया था। स्वीट हनी इन द रॉक नाम के एक बैंड ने पहली बार इसे मंच पर गाया।)

जो पोशाक मैं पहनती हूँ
वह दुनिया भर के इंसानी हाथों की छुअन का
एहसास लिये
मुझ तक पहुँचती है
पैंतीस फ़ीसदी सूत, पैंसठ फ़ीसदी पोलिएस्टर
इस सफ़र की शुरुआत मध्य अमेरिका से होती है
अल साल्वाडोर के कपास के खेतों में
ख़ून से सने एक प्रान्त में कहीं
जहाँ ज़हरीली दवाओं का छिड़काव किए हुए
पौधों से
कोई मज़दूर औरत दो डॉलर की ख़ातिर
चिलचिलाती धूप में कपास चुन रही होती है
फिर हम अगले पड़ाव पर पहुँचते हैं
कारगिल
फ़सलों का कारोबार करने वाली
दुनिया की नामी-गिरामी कम्पनी
कपास को पनामा नहर और ईस्टर्न सीबोर्ड से
ढोते हुए
अमेरिका में पहले क़दम रखवाती है
साउथ कैरोलिना की बर्लिंगटन मिलों में
उस कपास की पहली मुलाक़ात
डूपोण्ट की न्यू जर्सी स्थित पेट्रोकेमिकल मिल्स
से आये
पोलिएस्टर के रेशों से होती है
डूपोण्ट के इन रेशों की कहानी
दक्षिण अमेरिका के एक देश
वेनेजुएला से शुरू हुई थी
जहाँ तेल निकालने के काम में लगे मज़दूर
महज़ छः डॉलर के मेहनताने पर
ख़तरों से खेलते हुए धरती के गर्भ से तेल
निकालते हैं
फिर एक्सॉन नामक
दुनिया की सबसे बड़ी तेल कम्पनी
त्रिनिदाद और टोबागो नाम के देश में
उस कच्चे तेल को पोलिएस्टर में
लगने वाले पेट्रोलियम में ढालती है
अब एक बार फिर उसे डूपोण्ट के कारख़ानों के लिए
कैरेबियाई और अटलाण्टिक महासागरों
की तरफ़ रवाना कर दिया जाता है
साउथ कैरोलिना की बर्लिंगटन मिल्स में
अल साल्वाडोर के ख़ून से लथपथ
खेतों में उपजे कपास से
मिलने के लिए
साउथ कैरोलिना में
बर्लिंगटन के कारख़ानों में कर्कश शोर
गूँजने लगता है
मशीनें मीलों लम्बे कपड़े के थान उगलने
लगती हैं
सीअर्स कम्पनी का मालिक अब अपने ईनाम
को लेकर
दोबारा कैरेबियाई समन्दर का रुख़ करता है
इस बार उसकी मंज़िल है हैती
गुलामी की ज़ंजीरों से आज़ाद होने के लिए
छटपटाता एक देश!
उधर राजधानी
पोर्ट औ प्रिंस के महल से बहुत दूर
तीसरी दुनिया की औरतें
सीअर्स कम्पनी के निर्देश पर
नये-नये डिज़ाइन और फ़ैशन के कपड़े सीने के लिए
रोज़ाना तीन डॉलर की दिहाड़ी के लालच में खटने
लगती हैं
तैयारशुदा ब्लाउज़ अब आख़िरी बार
तीसरी दुनिया को अलविदा कह
प्लास्टिक में लिपट कर
मेरे जिस्म पर सजने के लिए समन्दर में
रवाना होता है
और तीसरी दुनिया की मेरी यह बहन
अपने जिस्म पर अँधेरे की चादर लपेटे
सूने आसमान में ना जाने क्या तकने लगती है
और मैं पहुँच जाती हूँ सीअर्स के शोरूम में
जहाँ मैं अपना ब्लाउज़ ख़रीदती हूँ
बीस परसेण्ट डिस्काउण्ट पर
क्या मैं अब भी यक़ीन से कह सकती हूँ कि
मैं कसूरवार नहीं हूँ?

माओवादी चीन में रोज़मर्रा का जीवन

(पेज 14 से आगे)

कि ऐसी कोई घटना इस दौरान में नहीं हुई। हमने कहा, अच्छा पहली सुर्खी पढ़ो, मालूम हुआ कि प्रधानमन्त्री चाओ एन लाई ने साम्राजियों को ख़बरदार किया है। हमने कहा, आगे बढ़ो। पता चला, आगे अल्बानिया के सदर का पैग़ाम आया है। हमने कहा, और कोई ख़बर है। बोले, हाँ। आप लोगों के वूहान पहुँचने की ख़बर है। हमने झुँझलाकर कहा। वह तो हमें भी मालूम है। ख़बर वह होती है जो हमें मालूम ना हो। कहीं चोरी-डकैती, अगवा, आगज़नी की ख़बर हो तो सुनाओ। और नहीं तो कोई ट्रैफ़िक का हादसा तो हुआ होगा। तर्जमान ने सिर हिलाकर कहा कि इस क़िस्म की कोई वारदात आजकल यहाँ नहीं होती। ट्रैफ़िक का हाल आपने ख़ुद ही देख लिया है। कारें कम-कम ही हैं और वह ड्राइवर लोग एहतियात से चलाते हैं, क्योंकि शाम को उन्हें अपने सेठ को कोई बँधी-टुकी रक़म नहीं देनी पड़ती। और यदि ऐसा कोई हादसा हो भी जाये तो वह ख़बर थोड़ा ही होती है? उसका अख़बार से क्या तालुक?"

"हमने कहा - सुखन शनास नेई हाफ़िज़ा ख़ता इंजास्त (तू ही सुखन को नहीं समझ सका तो यह तेरी ही ग़लती है)। इन बेचारों को क्या मालूम कि दूसरे देशों में ख़बर किसे कहते हैं? यहाँ तो अगर कहीं वारदात हो जाये तो एक फ़र्लांग दूर जिस दूध वाले की दूकान है उसकी, उसके बच्चों, उसके दूर के रिश्तेदारों की तस्वीरें और जीवनियाँ छपती हैं। बाक़ी रहे राजनीतिक वाक़ियात और लीडरों की तकरीरें। जिन लोगों के पास फ़ालतू वक़्त होता है, वह उन पर भी एक ग़लत अन्दाज़ नज़र डाल लेते हैं। वरना हादसों की ख़बरें और तस्वीरें देखीं, आज के फ़िल्मी मसाले पर नज़र डाली। व्यापारी ने बोनस वाउचर का भाव देखा और स्कूल के लड़कों ने खेलों का सफ़ा निकाल लिया। कोई बड़े मियाँ हुए तो जायदादों और रिश्ते के इश्तिहार भी सही, बाक़ी तो बस..."

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2017-2019
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

वालमार्ट के हाथों फ्लिपकार्ट का सौदा

छोटी पूँजी के उजड़ने का स्यापा करने के बजाय पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने की तैयारी करिये!

मुकेश असीम

अमेज़न और वालमार्ट के बीच चली लम्बी प्रतिद्वन्द्विता के बाद फ़्लिपकार्ट आखिर वालमार्ट के हाथ बिक गयी जिसने पूरी कम्पनी का मूल्य 21 अरब डॉलर आँकते हुए 16 अरब डॉलर में इसके 77% शेयर ख़रीद लिये। तकनीकी तौर पर देखा जाये तो जो कम्पनी बिकी है, वह भारत में पंजीकृत फ़्लिपकार्ट की मालिक सिंगापुर की फ़्लिपकार्ट नामक कम्पनी है। फ़्लिपकार्ट हालाँकि 2007 में भारत में ही स्थापित हुई थी लेकिन बाद में पूँजी की बढ़ती आवश्यकता के लिए सिंगापुर में इसी नाम से एक कम्पनी स्थापित की गयी, जिसने भारतीय कम्पनी के अधिकांश शेयर ख़रीद लिये। सिंगापुर की इस कम्पनी ने पूँजी के लिए कई निवेशकों को शेयर जारी किये और अभी इसके सर्वाधिक 23% शेयर जापान के सॉफ़्टबैंक के पास हैं। अन्य निवेशकों में चीनी टेंसेण्ट, अमेरिकी टाइगर ग्लोबल, माइक्रोसॉफ़्ट, एक्सेण्ट, आदि हैं। इन सबके पास मिलकर इसके 80% से अधिक शेयर हैं तथा शेष इसके संस्थापकों - सचिन व बिन्नी बन्सल तथा कम्पनी के कुछ प्रबन्धकों के पास हैं। इस प्रकार देखा जाये तो **इस कम्पनी के वर्तमान मालिक भी विदेशी वित्तीय पूँजी निवेशक ही हैं, जिन्होंने अब कम्पनी में अपना हिस्सा एक और विदेशी निवेशक को बेच दिया है। इसलिए एक देशी कम्पनी के विदेशी कम्पनी के हाथ में चले जाने के नाम पर हास्यास्पद हायतौबा मचाने के बजाय इसके वास्तविक निहितार्थों को समझने की आवश्यकता अधिक है।**

इस सौदे पर ख़ास प्रतिक्रिया दो समूहों की है – एक, बीजेपी और उसका भोंपू कॉर्पोरेट मीडिया तथा उनके तथाकथित अर्थनीति विश्लेषक। इनका कहना है कि इस सौदे से भारत में भारी पूँजी निवेश और विकास होगा। दूसरा समूह वह है जो भारतीय समाज में अभी भी दलाल पूँजीपति वर्ग, अर्ध-सामन्ती अर्ध-औपनिवेशिक या नवऔपनिवेशिक सम्बन्ध देखने पर अड़े हुए हैं। पर दोनों ही इस बात को पूरी तरह छिपा या नज़रन्दाज़ कर जाते हैं कि फ़्लिपकार्ट पहले से ही विदेशी वित्तीय पूँजी के मालिकाने में थी और अब भी वही रहने वाली है। एक शेयर धारक द्वारा अपने शेयर की बिक्री से प्राप्त मुद्रा पूँजी उसके पास ही जाने वाली है। उससे देश या देश की जनता को किसी फ़ायदे की बात से बड़ी नौटंकी क्या हो सकती है! जहाँ तक इस सौदे से दलाल पूँजीपति वर्ग द्वारा अमेरिकी साम्राज्यवाद के सामने घुटने टेक देने की बात है तो तथ्य यह है कि वालमार्ट के लिए भारतीय बाज़ार के दरवाज़े कई वर्ष पहले से खुले हुए हैं – 2011-12 में वह सुनील मित्तल के भारती समूह की साझेदारी में ईजीडे नाम से काफ़ी खुदरा बिक्री स्टोर खोल भी चुकी है और फिर उस साझेदारी से बाहर भी निकल चुकी है। ये ईजीडे स्टोर अब किशोर बियानी के फ़्यूचर ग्रुप के मालिकाने में हैं। अब वालमार्ट ख़ुद 21 थोक बिक्री स्टोर चलाती है और उसके लगभग 1 लाख से भी अधिक ग्राहक ठीक वही किराना दुकान वाले हैं जिनकी जीविका की हिफ़ाज़त के नाम पर बहुत से लोग भारत में वालमार्ट का विरोध करते हैं। वैसे तो बीजेपी सरकार खुदरा बिक्री में 51% विदेशी निवेश की भी छूट पहले दे चुकी है, ऑनलाइन कारोबार की अनुमति तो पहले ही थी ही, और वालमार्ट या अन्य कोई विदेशी कम्पनी इन सबके अन्तर्गत भी भारत में कारोबार कर सकती है, जैसे अमेज़न और टेस्को पहले ही कर रही हैं। ऊपर रखी गयी बात का अर्थ वालमार्ट के पक्ष में तर्क देना या उसे भारतीय जनता के लिए हितकारी बताना नहीं है, बल्कि यह है कि वालमार्ट हो या अमेज़न या सोफ़्टबैंक या टेस्को – इन सबको भारत में निवेश के लिए प्रवेश देना या रोक लगाना यह भारतीय पूँजीपति वर्ग के अपने वक्ती हित और वैश्विक पूँजी के साथ साझेदारी की सौदेबाजी में होने वाले लेन-देन पर निर्भर करता है। इसलिए यह सौदा अपने आप में कोई ऐसी मौलिक परिवर्तनकारी घटना नहीं कही जा सकती जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था और राजसत्ता के चरित्र को परिभाषित करने की बात की जाये। अगर इस तरह के अलग-अलग सौदों से इन सम्बन्धों को परिभाषित किया जाये, तब टेलीकॉम के क्षेत्र में एक दशक या उससे पहले भारत में निवेश करने वाली वोडाफोन, यूनीनोर, एमटीएस, सिस्टेमा, आदि सबके भारत से बाहर हो जाने या भारतीय पूँजीपतियों द्वारा उन्हें ख़रीद लिए जाने से क्या निष्कर्ष निकाला जायेगा?

फिर आखिर इस सौदे को कैसे समझा जाये? उद्योग की भाँति व्यापार-वितरण के क्षेत्र में भी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के नियम से छोटी पूँजी प्रतियोगिता में बड़े पूँजीपति, विशेष तौर पर वित्तीय पूँजी के साथ गँठजोड़ से भारी मात्रा में पूँजी निवेश की क्षमता वाली संयुक्त शेयरपूँजी वाली कम्पनियों के मुक़ाबले नहीं ठहर सकतीं और उनका दिवालिया होकर या बड़ी पूँजीपति कम्पनियों द्वारा अधिग्रहित होकर समाप्त होते जाना एक स्वाभाविक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। ई-कॉमर्स में अत्याधुनिक तकनीक के अधिकाधिक प्रयोग और लाभ कमा सकने के लिए दीर्घावधि तक इन्तज़ार इस प्रक्रिया को और भी तेज़ करते हैं, इसलिए अधिकांश ई-कॉमर्स स्टार्ट अप या तो दिवालिया हो जाते हैं या जल्द ही और बड़ी ई-कॉमर्स कम्पनी में विलय हो जाते हैं, जिनके पास वित्तीय पूँजी से गँठजोड़ के कारण घाटे को लम्बे वक़्त तक खपाते जाने और तकनीक, लम्बी उत्पाद सूची के संभरण और वितरण की विस्तृत और जटिल व्यवस्था में निवेश करते जाने के लिए अत्यधिक मात्रा में पूँजी उपलब्धि सुनिश्चित हो। फ़्लिपकार्ट स्वयं सोफ़्टबैंक, टाइगर ग्लोबल, एकसेण्ट, टेंसेण्ट, आदि वित्तीय निवेशकों से पूँजी प्राप्त कर व मिन्त्रा, जाबोंग, आदि कई छोटी कम्पनियों को ख़ुद में विलयित कर बड़ी ई-कॉमर्स कम्पनी बनी थी। पर अब उसके लिए न सिर्फ़ हानि उठाते हुए अमेज़न का मुक़ाबला करना मुश्किल हो रहा था, बल्कि आगे मुकेश अम्बानी समूह की रिलायंस रिटेल और जियो द्वारा मिलकर इस क्षेत्र में उतरने की चल रही तैयारी से उसके अस्तित्व पर ही ख़तरा मँडरा रहा था। उसके निवेशकों के सामने बड़ा जोखिम प्रस्तुत था कि तीव्र व मारक होती इस प्रतियोगिता में दिवालिया हो जाने पर स्नैपडील के निवेशकों की तरह उनकी पूँजी भी मिट्टी में मिल जायेगी, अतः उनके द्वारा इससे पहले ही किसी बड़े ग्राहक के हाथ बिक जाने का दबाव बढ़ता जा रहा था। इसी प्रक्रिया में कम्पनी के सह-संस्थापक, पर अब प्रबन्धक ही बचे दोनों बन्सलों में से एक सचिन बन्सल द्वारा बिक्री से असहमति जताने पर इन निवेशकों ने उन्हें पहले ही मुख्य कार्याधिकारी पद से हटने को विवश कर दूसरे बन्सल को मुख्य कार्याधिकारी नियुक्त कर दिया था।

फ़्लिपकार्ट को वित्तीय वर्ष 2017 में 8,771 करोड़ रुपये का घाटा हुआ था, जबकि उसकी कुल बिक्री 19,854 करोड़ की ही थी अर्थात 44% घाटा। इसके पूर्व के दो वर्षों में इसकी बिक्री क्रमशः 10,246 और 15,403 करोड़ थी पर इसका घाटा भी क्रमशः 2,583 व 5,769 करोड़ था अर्थात बड़ी बात यह कि उसकी बिक्री जितनी बढ़ रही थी, घाटा उससे भी तेज़ गति से बढ़ रहा था – पिछले वर्ष बिक्री 29% बढ़ी तो घाटा 68%। इसलिए उसे अगले दसियों साल तक भी मुनाफ़ा होने की कोई उम्मीद तक नहीं थी, फिर भी ऐसी कम्पनी की क़ीमत हर साल बढ़ते हुए 1 लाख 40 हज़ार करोड़ रुपये कैसे हो गयी? ख़ुद अमेज़न को 20 साल बाद नगण्य लाभ हुआ है, वह भी ई-व्यापार से नहीं, बल्कि उसके सूचना प्रोद्योगिकी कारोबार से, लेकिन उसका मूल्य भी आसमान पर पहुँचा हुआ है। ऐसा क्यों?

इसको समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। 1980 के दशक तक जो लोग शेयर ख़रीदते थे, उनका मुख्य मक़सद उनके मूल्य में वृद्धि पर बेचकर मुनाफ़ा नहीं था, उनका आकर्षण शेयर पर हर वर्ष मिलने वाला लाभांश बैंक में जमा पर मिलने वाले ब्याज़ से अधिक था। किन्तु आज लाभांश की कोई चर्चा भी नहीं करता। सबसे बड़ी मानी जाने वाली कम्पनियाँ भी आज शेयर मूल्य का 1-2% लाभांश भी दुर्लभ ही देती हैं। मार्क्स ने जैसा बताया था - उद्योग में पूँजी के जैविक संघटन के बढ़ते जाने अर्थात चर पूँजी (श्रम शक्ति के प्रयोग) की तुलना में स्थिर पूँजी (मशीन, तकनीक, आदि) के अनुपात के बढ़ते जाने से कुल मुनाफ़ा तो बढ़ता है, किन्तु निवेश की गयी पूँजी की मात्रा पर मुनाफ़े की दर गिरती जाती है। इसलिए शेयर पूँजी पर लाभांश हो चाहे बैंक में जमा पर प्राप्त ब्याज़ की दर (आखिर वह भी तो उद्योग द्वारा हस्तगत अधिशेष मूल्य से ही आता है) घटती जाती हैं। लेकिन हर पूँजीपति को तो अधिकतम मुमकिन मुनाफ़े की तलाश होती है। इसलिए आज पूँजी के घनघोर संकेन्द्रण-सान्द्रण के युग में जमा हुई अकूत वित्तीय पूँजी अधिकाधिक मुनाफ़े के लिए सट्टेबाज़ की तरह व्यवहार करने लगती है। शेयर बाज़ार में भी अब उद्देश्य लाभांश कमाना नहीं बल्कि अधिकाधिक चक्रीय ख़रीद-बिक्री से शेयरों का मूल्य बढ़ाते जाकर मुनाफ़ा कमाना बन जाता है। स्टार्ट अप कम्पनियों में भयंकर रूप से बढ़ते घाटे और मुनाफ़े की कोई आशा न होते हुए भी उनमें वित्तीय पूँजी का निरन्तर बढ़ता निवेश इसी दाँव में होता है कि बढ़े मूल्य पर दूसरे को बेचकर भारी मुनाफ़ा हो। लेकिन यह प्रक्रिया भी अन्तहीन नहीं होती इसलिए एक दिन बाज़ार धड़ाम से गिर जाता है और कुछ पूँजीपति अगर भारी मुनाफ़ा कमा लेते हैं तो बहुत से कंगाल होकर ख़ुदकुशी भी करते हैं। ऐसी ही प्रक्रिया अभी अचल सम्पत्ति-मकानों के दामों में भी देखी जा सकती है, पर उसकी चर्चा अलग से। स्टार्ट अप कम्पनियों में भी ऐसा ही होता है। **एक फ़्लिपकार्ट में सोफ़्टबैंक को अगर एक साल में 60% लाभ मिल जाता है तो सैकड़ों स्टार्ट अप गुमनाम ही दिवालिया होकर दफ़न भी हो जाते हैं।** गुमनाम ही क्यों कई तो कुछ साल सितारों की तरह चमकने के बाद बस ब्लैक होल ही बन जाते हैं और उनका कहीं नामो-निशाँ भी नहीं मिलता। इनमें से विरले ही लाभ देने वाले कारोबार में तब्दील होते हैं।

पर इसका एक दूसरा कारण भी है। ई-कॉमर्स अभी व्यापार-वितरण के क्षेत्र में सर्वाधिक उन्नत तकनीक है जो अब कंक्रीट वाले स्टोरों के साथ विलय के द्वारा इसके पूर्ण समाजीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ा रही है। ये कम्पनियाँ विस्तृत भौगौलिक क्षेत्र में उपलब्ध हज़ारों क़िस्म के उत्पादों के भण्डारण व बड़ी जनसंख्या में उपभोक्ताओं की माँग-पसन्द की सूचनाएँ एकत्रित और व्यवस्थित करने, माँग पर सबसे व्यावहारिक भण्डार से उपभोक्ता को उसकी पूर्ति की सर्वाधिक कुशल व्यवस्था करने के साथ ही उत्पादकों को किन उत्पादों की समाज में कितनी मात्रा में माँग है और यह कैसे परिवर्तित हो रही है, यह सूचना तत्काल पहुँचाने की उन्नत तकनीक और संगठन विकसित कर रही हैं, जिससे उत्पादकों के लिए भी यह मुमकिन हो जाये कि वे अपनी उत्पादन योजनाओं को बदलती माँग के अनुसार शीघ्रता एवं कुशलता से बदल सकें। कम पूँजी, पुराने संगठन और तकनीक वाला कोई वितरक इसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। इस रूप में ये वितरण प्रक्रिया का अब तक का सबसे उन्नत रूप हैं। इनके द्वारा वितरण प्रक्रिया को व्यक्ति-परिवार आधारित व्यवसाय या छोटे पूँजीपतियों के प्रभुत्व के दायरे से बाहर निकालकर इसका पूर्ण समाजीकरण किया जा रहा है। ख़ुद फ़्लिपकार्ट में ही आज 33 हज़ार कार्मिक काम करते हैं। भविष्य की इस दिशा को पहचानकर भी वित्तीय पूँजी इस तकनीक-संगठन का विकास करने वाले स्टार्ट अप व्यवसायों को हस्तगत करने के लिए उत्सुक है और भविष्य में मुनाफ़े के लिए कुछ वर्षों तक भारी घाटा खपाने का दाँव लगाने के लिए भी तैयार है। इसलिए भी वे इन कम्पनियों के लिए समान स्तर के कारोबार-मुनाफ़े वाली कम्पनियों के मुक़ाबले अधिक बाज़ार मूल्य देने को तैयार हैं।

ई-कॉमर्स का एक और नज़रिये से भी बहुत महत्व है। वितरण के समाजीकरण की यह उन्नत तकनीक और संगठन एक और तो वितरण में लगे बड़ी तादाद वाले टटपुँजिया तबक़े को इससे निकाल बाहर करेगा और इन संगठनों में प्रबन्धक और श्रमिक बनने के लिए मजबूर कर वर्ग-संघर्ष को और तीव्र करेगा। साथ ही भविष्य के समाजवादी समाज में उत्पादन, भण्डारण, माँग, वितरण के हिसाब की सूचनाएँ तीव्र गति से उपलब्ध कराकर समाज की सामूहिक आवश्यकताओं के लिए उत्पादन की आर्थिक योजना की गुणवत्ता बढ़ाकर आवश्यकताओं और उत्पादन के बीच के अन्तर को कम --कम किया जा सकेगा। इसलिए वितरण के समाजीकरण द्वारा टटपुँजिया व्यापारी-दुकानदार तबक़े का यह सर्वहाराकरण इनके जीवन के लिए तो एक दुखद, दर्दनाक अध्याय होगा, लेकिन इस दर्द का इलाज इतिहास की इस प्रक्रिया को रोकने की व्यर्थ कोशिश नहीं, निजी सम्पत्ति की समाप्ति के द्वारा सम्पूर्ण उत्पादन और वितरण प्रक्रिया के समाजीकरण वाली समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की ओर बढ़ना है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006